डॉ० एल्० पी० टेसीटरी कृत

रामचरितमानस
और
वाल्मीकि रामायण

•

राधिकाप्रसाद त्रिपाठी



डॉ० एल्० पी० टेसीटरी कृत

रामचरितमानस
और
वाल्मीकि रामायण

अनुवादक

राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

एम्० ए०, पी-एच्० डी०

भूमिका-लेखक

डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, डी० लिट्०

आचार्य एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

न्द प्रकाशन, फैज़ाबाद

प्रकाशक
आनन्द प्रकाशन
दीवानी मिसिल
फैजाबाद

प्रथम संस्करण
१६७४

मुद्रक
सरदार प्रिंटिंग प्रेस
१३०४, धारा रोड, फैजाबाद।

समीक्षकप्रवर

पूज्य गुरुवर डॉ० रामचन्द्र तिवारी

को

भूमिका

भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद यहाँ के प्राचीन वाङ्मय से यूरोपीय विद्वानों का सम्पर्क बढ़ा और उसके शोधपूर्ण अनुशीलन की एक प्रशस्त परम्परा का सूत्रपात हुआ। इंग्लैंड ही नहीं जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि देशों के विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंशादि प्राचीन भाषाओं तथा समकालीन देश भाषाओं के विविध रूपात्मक साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयास किया। कार्य-निष्ठागत समानता के बावजूद इन विद्वानों के दृष्टिकोण में परस्पर सूक्ष्म अन्तर दिखाई पड़ता है। सुविधा के लिए इन्हें तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम में वे प्राच्यविद् आते हैं जो ईसाई मत के प्रचारक विभिन्न मिशनों द्वारा भारत भेजे गये थे। एक विशिष्ट विचारधारा से प्रतिबद्ध होने के कारण उनका सारा अध्ययन साम्प्रदायिक आग्रह से युक्त रहा है। दूसरा वर्ग ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय शासन-सेवा में नियुक्त कर्मचारियों का है जिन्होंने अपने व्यावहारिक जीवन से असम्बद्ध होते हुए भी अध्ययन और अनुसंधान का क्षेत्र अन्तरात्मा की प्रेरणा से चुना था। प्रथम वर्ग के विद्वानों की अपेक्षा इनकी दृष्टि अधिक साफ थी; किन्तु जातीय श्रेष्ठता के भाव से ये भी अपने को मुक्त नहीं कर सके थे। इसकी झलक इनकी कृतियों में यत्र-तत्र मिलती है। तीसरा वर्ग ऐसे प्राच्यविदों का है जो धर्म तथा शासन के आवरण से मुक्त थे और शुद्ध साहित्यिक जिज्ञासा की तुष्टि के लिए भारतीय साहित्य के अनुशीलन में स्वेच्छया प्रवृत्त हुए थे। इनके हृदय में इस देश की प्राचीन ज्ञान-सम्पदा के प्रति सम्मान की भावना के साथ ही अज्ञान एवं जड़ता के पाश से इसे मुक्त करने की आकुलता थी।

यह संयोग की ही बात है कि इस देश के परम्परागत जीवन में अजस्र रूप से प्रवहमान रामकथा के प्रकाश-स्तंभ वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस को उक्त तीनों वर्गों के प्राच्यविदों ने समान रूप से समादर प्रदान किया। डॉ० कार्पेण्टर, सर जार्ज ग्रियर्सन और डॉ० एल्० पी० टेसी-

टरी के दिशा-निर्देशक प्रयास इसके प्रमाण हैं। इस बृहत्त्रयी में भी डॉ० टेसीटरी का एक विशिष्ट स्थान है। राम-काव्य पर शोध-उपाधि प्राप्त करने वालों में तो वे प्रथम हैं ही आलोच्य विषय के प्रति अनाविल दृष्टि तथा समर्पित भाव सम्पन्न आलोचकों में भी उनकी अप्रतिमता असंदिग्ध है।

टेसीटरी ने अपने शोध-प्रबंध 'रामचरितमानस और रामायण' में तुलसीदास द्वारा मुख्याधार के रूप में गृहीत वाल्मीकि रामायण सम्बन्धी स्थापनाओं की सोदाहरण विवेचना की। तुलसी–साहित्य से सम्बद्ध यह उनका प्रथम शोध–कार्य था। इसके अनन्तर 'भक्त और कवि तुलसीदास' 'तुलसीदास पर रामानुज और शंकराचार्य का प्रभाव' तथा 'तुलसीदास की प्राचीन बैसवाड़ी के व्याकरण के कुछ नमूने' शीर्षक विद्वत्तापूर्ण लेखों के द्वारा उन्होंने तुलसी-वाङ्मय के अनुशीलन में गहरी रुचि दिखायी। यह सारा कार्य राजस्थानी भाषा तथा पुरातत्त्व विषयक योजनाओं में अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने केवल तीन वर्ष–सन् १९११ से १९१४– के अल्पकाल में पूरा कर डाला। आलोच्य ग्रंथ पर विचार करते समय हमारा ध्यान उनकी निम्नांकित उपपत्तियों की ओर सहज रूप से जाता है—

(१) रामचरितमानस की कथा-योजना में तुलसीदास ने मुख्य रूप से वाल्मीकि रामायण का आधार ग्रहण किया है और मानस के प्रणयन की सम्पूर्ण कालावधि में उनके समक्ष वाल्मीकि रामायण की गौड़ीय, उत्तरी तथा पश्चिमी तीनों वाचनाओं की पाण्डुलिपियाँ रही हैं। बाल्यकाल में सुनी हुई कथा की स्मृति खंडित होने पर उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार इन प्रतियों से प्रसंगों का संयोजन तथा उक्तियों का चयन किया। इसी संदर्भ में टेसीटरी ने यह भी कहा है—"मूल स्रोत के रूप में रामायण का उपयोग करते हुए तुलसीदास ने उससे गृहीत सामग्री को अपनी आध्यात्मिक भावनाओं से समन्वित कर काव्य का भव्य रूप प्रदान किया।"

(२) तुलसीदास ने सजग कलाकार की भाँति अपनी प्रतिष्ठा एवं मौलिकता की रक्षा के लिये अपने को वाल्मीकि की कला से मुक्त रखने का प्रयास किया।

(३) रामचरितमानस के जो तथ्य या तत्त्व रामायण की उक्त वाचनाओं से मेल नहीं खाते वे 'क्वचिदन्यतोऽपि' में ध्वनित संकल्पानुसार अन्य स्रोतों से गृहीत हैं।

जहाँ तक प्रथम स्थापना का सम्बन्ध है इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि रामचरितमानस क्या समस्त परवर्ती रामायणों में वर्णित रामकथा का प्रेरणास्रोत आदि कवि कृत रामायण ही है। 'मानस' के प्रारम्भ में स्वयं गोस्वामी जी भी 'यद् रामायणे निगदितं' और 'बन्दउँ मुनि पद कंज रामायन जेहि निरमयउ' जैसी अभिव्यक्तियों से उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते हैं।

सम्पूर्ण रचनावधि में तुलसीदास द्वारा विमर्श के लिए वाल्मीकि रामायण की पाण्डुलिपियाँ रखने की मान्यता का डॉ० ग्रियर्सन ने प्रत्याख्यान किया है। उनकी धारणा है कि तुलसी ने एक वैष्णव गुरु के निर्देशन में शिक्षा प्राप्त कर अपने बाल्यकाल में ही सम्पूर्ण रामायण कंठस्थ कर ली थी और वे उसकी कथा के अन्य रूपान्तरों से सुपरिचित हो गये थे। यद्यपि बाद में स्वयं टेसीटरी ने बड़ी सुजनता के साथ ग्रियर्सन की उक्त मान्यता स्वीकार कर ली थी फिर भी इस संदर्भ में टेसीटरी की पूर्व स्थापना अपेक्षाकृत अधिक तर्क संगत ठहरती है। वस्तुतः मानस के बालकांड के प्रारम्भ में प्रबन्ध-रचना की जो विशद पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है उससे यह विदित होता है कि तुलसीदास ने अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति के स्वरूप-निर्धारण में प्राचीन धार्मिक वाङ्मय का अनुशीलन ही नहीं, पूर्ण मनोयोग से आलोड़न भी किया था। अन्यथा उनके जैसा मर्यादानिष्ठ और उत्तरदायी रचनाकार उसे 'नानापुराणनिगमागम' से सम्मत होने की घोषणा डंके की चोट पर न करता। ऐसी दशा में यह कल्पना तथ्याश्रित मानी जा सकती है कि रामायण के विभिन्न संस्करण उन्हें, ग्रंथ-रचना के समय उपलब्ध रहे होंगे। अनेक प्रासंगिक तथा अवांतर कथा प्रसंगों से मंडित इतने बड़े चरित-ग्रंथ की रचना मात्र अबोधावस्था में सुनी राम कहानी पर आधृत मानना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि भारत में श्रुति, स्मृति और व्याकरण की भाँति महाकाव्यों की श्रुति-परम्परा का विकास नहीं हुआ। सुदूर अतीत में भी इनकी पांडुलिपियाँ ही तैयार की जाती रहीं। अतः तुलसी द्वारा रामायण की पांडुलिपि रखने की बात आग्रहमुक्त होकर स्वीकार की जानी चाहिए।

टेसीटरी का यह कथन भी सर्वांश में सत्य है कि तुलसीदास ने आधारभूत सामग्री को अपनी आध्यात्मिक भावनाओं से वासित किया। डॉ० ग्रियर्सन ने भी इस बात को प्रकारान्तर से स्वीकार किया है। उन्होंने

लिखा है—"तुलसीदास ने केवल वाल्मीकि रामायण में निमग्न होकर काव्य-रचना नहीं की, बल्कि अपने आराध्य के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले उस समय के सभी वैष्णव ग्रन्थों का अवगाहन किया।" तात्पर्य यह कि तुलसी ने जहाँ एक ओर स्वयं अमृतोपम 'राम सीय जस सलिल' में अवगाहन कर आनन्द-लाभ किया वहीं दूसरी ओर अपने पाठकों एवं श्रोताओं को भक्ति-भावना से आप्यायित किया। इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर वेद, पुराण और संतमत का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए रामकथा के 'मंगल करनि कलिमल हरनि' स्वरूप को रेखांकित किया है।

तुलसी की रचनाधर्मिता की चर्चा करते हुए टेसीटरी ने कहा है कि उन्होंने अपने को वाल्मीकि की शैली और अभिव्यक्ति से सर्वथा स्वतन्त्र रखा है। वे वाल्मीकि के कलात्मक सूत्र का उपयोग करने में उदासीनता प्रदर्शित करते हैं और अनजाने भी उनके द्वारा प्रयुक्त किसी बिंब, उपमान अथवा काव्यांश से प्रभावित नहीं होते।" कहने की आवश्यकता नहीं कि 'कवित विबेक एक नहिं मोरे सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे" जैसा वक्तव्य देने वाले तुलसी मानस की रचना करते समय अपने कवि-कर्म के प्रति आद्योपांत सजग थे। उन्होंने अपने हृदय में रामकथा के काव्यानुभूति-रूप में स्फुरित होने और उसका अपने ढंग से वर्णन करने का स्पष्ट उल्लेख किया है—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
सब जानि प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥
राम प्रताप सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥

डॉ० टेसीटरी का यह निष्कर्ष भी सुविचारित था कि रामचरित-मानस के जो कथा-प्रसंग या विचारतत्त्व रामायण से भिन्न हैं वे अन्य स्रोतों से लिए गये हैं। इससे मतभेद का प्रश्न ही नहीं उठता। गोस्वामी जी मानस की रचना में संस्कृत भाषा में निबद्ध रामकथा से सम्बद्ध निगम, आगम, पुराणादि प्राचीन धार्मिक तथा ललित साहित्य से उपयोगी सूत्र संकलित किये। उनके इस अभियान में प्राकृत, अपभ्रंश तथा लोक भाषाओं के राम कथा-काव्य भी नहीं छूटने पाये। किन्तु यह जिज्ञासा समाधान की अपेक्षा रखती है कि वे स्रोत कौन थे और किन स्थलों पर किस मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

रामचरितमानस की इस आधारभूत सामग्री की खोज तुलसी साहित्य के अनुसंधित्सुओं के समक्ष एक अत्यंत प्रीतिकर चुनौती रही है। विद्वानों, शोधार्थियों और संतों ने अपनी रुचि तथा गति के अनुसार इसका समाधान ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया है।

इस दिशा में रायबरेली (उ० प्र०) के ठाकुर रणबहादुर सिंह के द्वारा तैयार करायी गयी रामचरितमानस की निगमागमी टीका सर्वाधिक व्यापक, व्यवस्थित एवं प्राचीनतम प्रयास था। ग्रंथ की भूमिका में वे लिखते हैं— "गोस्वामी जी के मंगलाचरण के मुख्यतः पहले तथा सातवें श्लोक के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना हुई है। मंगलमय वर्णों तथा अर्थों, रसों एवं छंदों के संघ की यथामति व्याख्या करते हुए नानापुराणों, निगमागमों, रामायणों तथा अन्य ग्रन्थों से तुलनात्मक वाक्य प्रत्येक दोहा, चौपाई तथा छंदों के नीचे उद्धृत करके उनका सुबोध भाषानुवाद करने का प्रयास इसमें किया गया है। ठौर-ठौर टीका-टिप्पणियों द्वारा भँवर, अवरेब एवं महामन्त्रों का का चमत्कार यथासाध्य प्रदर्शित करने का प्रयत्न भी हुआ है।"

इस ज्ञान-यज्ञ का आरम्भ डॉ० टेसीटरी द्वारा प्रस्तुत शोधग्रंथ से लगभग १५ वर्ष पूर्व १८९६ ई० में हुआ था, जो २६ वर्षों के अनवरत प्रयास के बाद अनेक पंडितों की सहायता से १९२२ ई० में पूरा हुआ। १९२२ से १९३१ तक ९ वर्ष में उन्होंने इसी के निमित्त एक प्रेस खोलकर अपनी देख-रेख में इसे मुद्रित कराया। इसकी तैयारी में ठाकुर साहब ने लाखों रुपये व्यय किये। किसी ग्रन्थ की टीका में कहीं भी इतनी धन-शक्ति लगायी गयी हो यह अभी तक सुनने में नहीं आया। ग्रन्थ की गरिमा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि केवल बालकांड में संदर्भित ग्रंथों की संख्या ९७ है। अब तक मानस के संदर्भ-ग्रंथों की इतनी बड़ी सूची किसी स्रोत से प्रकाश में नहीं आयी थी।

रामचरितमानस की आधारभूत सामग्री के रूप में तीन ग्रंथों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है—योगवाशिष्ठ, अध्यात्मरामायण और भुशुण्डि रामायण। कुछ विद्वानों ने भागवत तथा वशिष्ठसंहिता को भी इनमें सम्मिलित किया है। इन पांचों ग्रंथों में, अद्यावधि अप्रकाशित होते हुए भी, रामचरितमानस के मुख्य प्रेरणास्रोत के रूप में भुशुण्डिरामायण की संभावना अधिकांश अनुसंधित्सुओं ने व्यक्त की है। डॉ० वाद्वील का मत है कि रामचरितमानस की अरण्यकाण्ड से लेकर लंकाकांड तक की कथा का आधार

भागवत पुराण से प्रभावित कोई साम्प्रदायिक रामायण ही होगी, सम्भवतः यह भुशुण्डिरामायण ही हो।"[1] भुशुण्डिरामायण के उपलब्ध हो जाने से वादवील का उपर्युक्त अनुमान इस व्यतिरेक के साथ ठीक उतरा कि मानस की सम्पूर्ण कथा-योजना पर उसका गहरा प्रभाव है, केवल अन्तिम अध्यायों पर नहीं। ग्रंथ के अप्राप्त होने का उल्लेख डॉ० ग्रियर्सन ने भी किया था और डॉ० टेसीटरी ने उक्त स्थिति में भ्रांतिवश यह धारणा बनाली थी कि 'भुशुण्डिरामायण' में मानस के उत्तरकांड में दिये गये काग-भुशुण्डि-संवाद का उपबृंहण मात्र है। फिर भी उनकी यह धारणा सत्य निकली कि तुलसी ने भुशुण्डिरामायण सहित अन्य पौराणिक स्रोतों का उपयोग मानस के कलात्मक पक्ष को समृद्ध करने में किया।

भारत के विभिन्न प्रदेशों से उक्त ग्रंथ की चार पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो जाने पर अब आधिकारिक रूप में यह कहा जा सकता है कि यह श्री वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धांतों पर आधृत आर्ष ग्रंथ है और इसके अन्तर्गत ब्रह्मा-भुशुण्डि-संवाद रूप में सम्पूर्ण रामकथा वर्णित है। रामचरितमानस के व्याख्याकारों ने भी यत्र-तत्र उद्धरण देकर मानस के आधार ग्रंथों में इसकी चर्चा की है। निगमागमी टीका तथा पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित रामचरितमानस की भूमिका में उद्धृत भुशुण्डिरामायण के श्लोक उपर्युक्त धारणा की पुष्टि करते हैं।

डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने स्वसंपादित अध्यात्मरामायण की भूमिका में भुशुण्डिरामायण को उसका मूलाधार होने की संभावना व्यक्त की थी[2]; जिसकी यथार्थता अब दोनों ग्रंथों की तुलना से सिद्ध हो गयी है। रामगीता, कथाक्रम की एकरूपता, रामभक्ति एवं रामनाम-माहात्म्य, तांत्रिक पद्धति पर रामोपासना, वैष्णवाचार के मूल सिद्धांतों में निष्ठा आदि तत्त्व उक्त दोनों ग्रंथों में समान रूप से पाये जाते हैं। इस स्थिति में रामचरितमानस पर भुशुण्डिरामायण का प्रभाव विशेष रूप से अनुसंधेय हो जाता है। नमूने के लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

१. तुलसीदास रचित रामचरितमानस का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन, भूमिका, पृ० २०।

२. वही, पृ० १५ से उद्धृत।

१. राम की जन्म-तिथि—

चैत्रस्य शुक्ल पक्षे तु नवम्यां श्री पुनर्वसौ।
अभिजित नाम योगेऽसौ कौसल्यानंदनोऽभवत ।।

—भु०रा०, पूर्व, १०।२

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ।।

—रा० मा०, १।१९०।१

२. लक्ष्मण-परशुराम-संवाद—

धनुरेक गुणंधत्ते, बलमस्माकमूर्जितम् ।
उपवीतं नव गुणं विशिष्ट भवतां बलम् ।।

--भु०रा०, पूर्व, ७८।२३

देव एक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ।।

—रा०मा०, १।२८१।७

३. मंथरा-प्रसंग—

मंथरा नाम कैकेय्या दासी मंदतयाधिया ।
तस्या कंठे सन्निविश्य ब्राह्मी प्रति विधास्यति ।।

--भु०रा०, दक्षिण, १४।१०

नाम मंथरा मंद मति, दासी कैकेई केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ।।

--रा० मा०, २।१२

४. भरत-गुह-भेंट—

इत्युक्त्वा बलवान वीरः शृङ्गवेर पुराधिपः ।
गृहीत्वो पायनो दिव्यान् मत्स्यान् पाठीन रोहितान् ।।
मांसानि मधु भांडश्च फलानि विविधानि च ।
अभ्यगाद्भूरतं शूरः सन्नद्ध कवचो गुहः ।।

—भु०रा०, दक्षिण, ८०।२७-२८

अस कहि भेंट संजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने ।।

--रा०मा०, २।१९३।२, ३

भुशुण्डि रामायण का यह प्रभाव तुलसी की अन्य कृतियों पर भी दिखायी देता है। विशेष रूप से कवितावली और गीतावली के अनेक प्रसंगों में इसकी छाया स्पष्ट है; जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तुलसीदास ने शृङ्गारी रामोपासना के प्रधान उपजीव्य ग्रंथ भुशुण्डिरामायण से ऐश्वर्यपरक रामकथा के साथ ही माधुर्य-व्यंजक प्रसंगों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया। इन तथ्यों के प्रकाश में यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि तुलसी के 'मानस' तथा अन्य ग्रंथों पर वस्तु-विन्यास एवं शैली की दृष्टि से जितना प्रभाव भुशुण्डिरामायण का है उतना न वाल्मीकि रामायण का और न ही अध्यात्म-रामायण का।

अंत में रामकथा की अंतर्यात्रा में तल्लीन उदारमना साहित्य-साधक टेसीटरी के प्रति मैं नतमस्तक हूँ। उस दृढ़व्रती ने जननी-जन्मभूमि की ममतामयी गोद त्यागकर अपने ३२ वर्षीय लघु जीवन का सर्वोत्तम अंश आतपवात सहते हुए शोध-साधना में बिताये और अंततोगत्वा अपने शरीर के अणु-परमाणु भी अपनी कर्मभूमि को समर्पित कर दिए। उनकी जीवनव्यापी साधना के अमर पुष्पों से भारतीय वाङ्मय ही अलंकृत नहीं हुआ, इस देश के विद्वानों को शोध की नयी दिशाएँ भी मिलीं, नवीन चेतना भी प्राप्त हुई। मेरे लिये यह हर्ष का विषय है कि मेरे प्रिय शिष्य डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने इस शोध-ग्रंथ को प्रकाश में लाकर हिन्दी-जगत् के लिये अब तक आकाश गङ्गा बनी हुई स्रोतस्विनी को वशिष्ठी गंगा के रूप में सुलभ करा दिया।

विजयादशमी, २०३१
साकेत
बेतिया हाता, गोरखपुर।

भगवतीप्रसाद सिंह

अनुवादकीय

सर्वप्रथम सन् १९५९ में, पी-एच्० डी० उपाधि हेतु शोध–विषय का चयन करते समय डॉ० एल्० पी० टेसीटरी कृत 'रामचरितमानस और रामायण' शीर्षक हिन्दी विषयक प्रथम शोधप्रबंध का नाम मेरे मानस-पटल पर अंकित हुआ था। कुछ समय पश्चात् जब राजस्थान की एक लोकविश्रुत निर्गुण शाखा 'रामसनेही सम्प्रदाय' पर शोध-कार्य करने का सुयोग मिला तब प्रसंगवशात् डॉ० नामवर सिंह द्वारा अनूदित टेसीटरी कृत 'पुरानी राजस्थानी' नामक एक दूसरी पुस्तक पढ़ने को मिली। स्वभावतः डॉ० टेसीटरी के प्रति मेरे अन्तर में जिज्ञासा के भाव प्रबल हुए और यह विचार उठा कि यदि उनका उक्त शोध-ग्रन्थ हिन्दी-भाषियों के लिए उपलब्ध हो जाय तो बहुत उत्तम है। इसके बाद भी यदा-कदा इस ओर ध्यान जाता रहा, किन्तु 'गृह कारज नाना जंजाला' के कारण कोई प्रगति नहीं हो सकी।

पाँच-छः वर्ष पूर्व की बात है, एक दिन अप्रत्याशित रूप से अपने महाविद्यालयीय ग्रन्थागार में 'इंडियन एंटीक्वेरी' के सन् १९१२ और '१३ वाले वे अंक देखने को मिले जिनमें उक्त प्रबन्ध दो किस्तों में प्रकाशित हुआ था। मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। मैंने उन्हें अपने नाम निर्गत कराया और उत्साहपूर्वक प्रायः संपूर्ण कृति थोड़े ही दिनों में अनूदित कर डाली। परन्तु बहुविध पारिवारिक एवं महाविद्यालयीय कठिनाइयों के कारण उस समय अनुवाद को अंतिम रूप देने का कार्य जहाँ का तहाँ रह गया।

बीच-बीच में मित्रों की ओर इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का आग्रह होता रहा और अपनी सीमाओं में बँधा मैं भी अब-तब करता रहा। गत दिनों श्रद्धेय गुरुवर डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय ने भी इस कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न कर डालने का सुझाव दिया; जो मेरे लिये आदेशवत् सिद्ध हुआ। डॉ० साहब ने सक्रिय प्रोत्साहन के रूप में न केवल डॉ० टेसीटरी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में मुझे सहायक सामग्री प्रदान की वरन् यथासमय अपनी

सारगर्भित भूमिका से इस ग्रन्थ को गौरवान्वित भी किया। अस्तु, आचार्य श्री के प्रति मैं नम्र शिरष्क हूँ।

अनुवाद का भाषा-संस्कार करते समय मेरे मन में एक बात अनेक वार आयी कि 'रामचरितमानस और रामायण' नामक शोधप्रबंध अपने मूलरूप में इटालियन भाषा में लिखा गया था और मेरे अनुवाद का आधार उक्त कृति का स्वयं टेसीटरीकृत अंग्रेजी रूपान्तर है। किन्तु, मैंने अनुभव किया कि मूल लेखक के द्वारा अनूदित ग्रन्थ को 'मूल' ही मानना चाहिये क्योंकि उसमें लेखक अपनी भाषा, भाव-भंगिमा के साथ समग्रत: निष्पन्न रहता है। ग्रंथ की चमत्कृत कर देने वाली शैली और इसके गम्भीर विवेचन के कारण भी मैं अपने लोभ का संवरण नहीं कर सका। तात्पर्य यह कि, मैंने इस आधारभूत अनूदित गंथ को मूलग्रन्थ मानकर इसका अनुवाद किया है। अनुवाद कैसा बना है इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं करेंगे; मैंने अपनी ओर से वस्तु और रूप दोनों दृष्टियों से इसे यथासंभव जीवन्त बनाने का भरपूर प्रयास किया है।

'रामचरितमानस और रामायण' शीर्षकान्तर्गत 'रामायण' शब्द अनेक बार संदेह का कारण बनता है। प्रश्न उठता है कि आखिर कौन सी रामायण? 'रामायन सत कोटि अपारा' की पूर्ण अवधारणा तो मुझे नहीं है किन्तु तुलसीदास के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल में इस नाम से अनेक काव्यकृतियों का प्रणयन हुआ है। अत: पाठकों की सुविधा के लिये मैंने शीर्षक में किंचित् परिवर्तन कर 'रामायण' के स्थान पर 'वाल्मीकि रामायण' कर दिया है. अन्यत्र वह यथापूर्व है। ग्रन्थ की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए प्रारंभ में टेसीटरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में इस पुस्तक पर डॉ० ग्रियर्सन द्वारा लिखित समीक्षा, टेसीटरी की रचनाओं की सूची और नामानुक्रमणिका के रूप में तीन परिशिष्ट दे दिये गये हैं।

वैसे तो मेरी धारणा है कि मनुष्य के प्रत्येक उदात्त कर्म में बड़े-बूढ़ों के स्नेहाशीष और स्वजनों के सद्भाव की प्रच्छन्न किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। फिर भी, प्रस्तुत संदर्भ में प्रिय बंधु श्री ललितमोहन और प्रियवर श्री माधवप्रसाद पांडेय एवं श्री ओंकारनाथ त्रिपाठी का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है। भाई ललितमोहन जी ने मुझे कतिपय महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान कीं, जिनके बिना यह ग्रन्थ कदाचित् अधूरा रह जाता। एतदर्थ मैं

उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । श्री पांडेय और श्री त्रिपाठी ने पांडुलिपि तैयार करने से लेकर ईक्ष्य-शोधन तक छायावत् साथ-साथ रहकर कार्य किया है । ये मेरे स्नेहाशीष के विशेष रूप से अधिकारी रहे हैं। मैं इनके मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ। सरदार श्री जंगबहादुर सिंह की तत्परता से मुद्रण-कार्य बड़ी सुविधापूर्वक सम्पन्न हुआ। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ ।

यदि यह ग्रन्थ तुलसीसाहित्य के अध्येताओं के लिए उपादेय सिद्ध हो सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा ।

अनन्तचतुर्दशी, २०३१
छायातप
दीवानी निखिल, फैजाबाद ।

राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

"जितना बन सकेगा मैं भारतीयों के हृदय में घुलमिल जाऊँगा। मैं भारत में इसीलिए आया हूँ क्योंकि मुझे भारत के लोगों व उनके भाषा-साहित्य से प्रेम है। अतः, मैं जितना ही अधिक उसके विषय में जान सकूँगा, मुझे उतनी ही अधिक प्रसन्नता होगी। मैं कोई अंग्रेज नहीं हूँ, जो उन सब वस्तुओं को हेय दृष्टि से देखते हैं जो इङ्गलैंड की या कम से कम यूरोप की नहीं हैं। मेरे मन में भारतीयों के प्रति उच्चतम आदर और सराहना के भाव हैं।"

(एक पत्रांश)

"इस कमरे में बिताये गये कुछ क्षण, मैं चाहता हूँ, मेरे वर्ष बन जाएँ।"

(बीकानेर में लिखित डायरी से)

—एल० पी० टेसीटरी



डॉ० लुईजि पियो टेसीटरी

डॉ० एल्० पी० टेसीटरी : एक परिचय

भारत की सांस्कृतिक गरिमा, इसकी ऐतिहासिक सम्पदा और यहाँ की माटी की मोहक गंध ने इसे सम्पूर्ण विश्व के लिए जिज्ञासा और आकर्षण का केन्द्र बनाया है। यही कारण है कि अत्यंत प्राचीन काल से यह देश विश्व के न जाने कितने सत्ता-लोभी शासकों, अध्यात्म एवं दर्शन के जिज्ञासुओं तथा साहित्य-कला-प्रेमियों के स्वप्नों का देश रहा है। इस दृष्टि से डॉ० लुइजि पियो टेसीटरी का नाम भारत-प्रेमी विदेशियों में अनंत काल तक श्रद्धा-संवलित हृदय से स्मरण किया जायगा। डॉ० टेसीटरी ने भारत और भारतीयता पर रीझकर न केवल इसे अपनी मातृभूमि का सम्मान दिया अपितु भारतीय चिन्ताधारा का अवगाहन कर, उसके भाव-रत्नों को उद्घाटित करते हुए उसे श्री-मंडित भी किया। इसीलिए आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने इनके कृतित्व का पुण्य स्मरण करते हुए इन्हें 'यूरोप और भारत के बीच अमर चिन्मय सेतु का निर्माता' कहा है।

जीवनवृत्त

डॉ० टेसीटरी का जन्म इटली के उदीने नामक नगर में, १३ दिसम्बर सन् १८८७ को, हुआ था। उनके एक भाई और एक बहन के होने का संकेत मिलता है; किन्तु माता-पिता और शेष परिवार के विषय में ठीक से पता नहीं चलता कि वे कौन थे और उन्होंने प्रतिभा के धनी टेसीटरी का पालन-पोषण किस प्रकार किया; जबकि उनके पिता उनकी मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक जीवित थे। सम्प्रति, इनके विद्यार्थी-जीवन के सखा डॉ० गियाकोमो मारग्रेथ के संक्षिप्त किन्तु मार्मिक वक्तव्य से ही उनके बाल्य जीवन पर न्यूनाधिक प्रकाश पड़ता है। डॉ० मारग्रेथ ने लिखा है "वे अधिकांश साथियों से भिन्न एक असाधारण बालक थे। मुझे उनका चरित्र भली प्रकार स्मरण है जो हमें आश्चर्यजनक लगता था। वे आदर्शों और स्वप्नों के लोक में विचरण किया करते थे। वे भारत की प्राकृतिक सुषमा, सांस्कृतिक श्री-सम्पदा पर मुग्ध होकर उसकी कल्पना में लीन रहा करते थे। वे

अपने साथी विद्यार्थियों की प्रमुदित और कोलाहलपूर्ण भीड़ से पृथक् रहकर अपना सम्पूर्ण समय ज्ञानार्जन, विशेषतः विदेशी भाषाओं के अध्ययन, में लगाते थे।" टेसीटर महोदय की इस प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए श्री गुरोनिल त्रिपिन ने भी लिखा है कि "हम टेसीटरी के मित्र और सहपाठी विनोद में उन्हें भारतीय लुई कहा करते थे क्योंकि उन्होंने लीजम (Lijumn) के अपने प्रथम वर्ष से ही, बड़ी तीव्र भावना व उत्साह और बिना किसी के पथ-प्रदर्शन के ही, केवल अपनी दृढ़ इच्छा और प्रखर बुद्धि से अपने को संस्कृत के अध्ययन में लगा दिया था। उनके व्याख्यानों का प्रिय विषय भारत होता था। वे बड़े भावावेग के साथ सनिष्ठ होकर कहा करते थे कि मुझको एक नये क्षितिज का पता लग गया है और मेरे स्वप्नों की दुनियाँ साकार हो गयी है।"

भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रति इस सीमा तक आकृष्ट होने के कारण उनका तन-मन-प्राण सब कुछ भारत के लिये समर्पित था। उन्होंने अनुभव किया कि किसी देश के अतीत और वर्तमान को गहराई से समझने के लिये आवश्यक है कि वहाँ की भाषा को समझा जाय क्योंकि भाषा ही किसी देश की आशा-आकांक्षा की संवाहिका तथा अतीत एवं वर्तमान की परिचायिका है। अतः उन्होंने भारतीय भाषाओं को अपने अध्ययन का विषय बनाया। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं का अध्ययन करने का संकल्प किया और सन् १९०६ में प्रो०पी०ई० पैवोलिनी के शिष्यत्व में रहकर फ्लोरेंस विश्वविद्यालय से संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १९१० में उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। एक वर्ष बाद सन् १९११ में वे प्रो० पैवोलिनी के ही निर्देशन में 'रामचरित-मानस और रामायण' शीर्षक निबंध पर डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित हुए। उक्त शोधकृति सर्व प्रथम इटालियन भाषा में प्रकाशित हुई थी और बाद में अंग्रेजी में रूपान्तरित होकर इंडियन एंटीक्वेरी, भाग ४०-४१, सन् १९१२, १३ में पुनर्मुद्रित हुई। डॉ० ग्रियर्सन ने तुलसी-साहित्य के अध्येताओं के लिए इस ग्रंथ की जोरदार संस्तुति की है। इसके अनन्तर उन्होंने कुछ समय तक फ्लोरेंस में ही रहकर काम किया और राष्ट्रीय पुस्तकालय में तीन सौ से भी अधिक हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी और बंगला भाषा के हस्तलिखित ग्रंथों की जाँच की। कुछ महीने उन्होंने जल-सेना में भी कार्य किया। इसी बीच डॉ० ग्रियर्सन की संस्तुति पर भारतीय कार्यालय लन्दन ने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के लिए उन्हें भारत आमन्त्रित कर लिया। फलतः

२४ मार्च सन् १६१४ को उन्होंने नेपल्स से भारत के लिये जलयान से प्रस्थान किया। अपनी बाल्यकाल की साध पूरी होती देखकर उनका हृदय कितना आह्लादित हुआ होगा इसे कोई सहृदय ही समझ सकता है। ८ अप्रैल को प्रातःकाल १० बजे उनका जलयान बम्बई बन्दरगाह पर पहुँचा और अब 'सुजलां-सुफलां', 'शस्य-श्यामलां' भारत देश उनके सम्मुख था। एक लम्बी यात्रा के कारण डॉ० टेसीटरी शरीर से तो बहुत थके थे किन्तु मन से अत्यंत पुलकित थे। अस्तु, अपने मित्र हरजनबाला के आतिथ्य में डॉ० नादगर के यहाँ एक दिन विश्राम करने के पश्चात् दूसरे दिन वे कलकत्ता के लिए रवाना हुए। दिनांक ११ अप्रैल को ७ बजे प्रातःकाल वे कलकत्ता पहुँच गए। ग्रीष्म ऋतु की प्रचंडता के कारण उन्हें लगभग तीन महीने तक कलकत्ते में रहने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके बाद उन्होंने २२ जुलाई को योजनापूर्वक राजस्थान के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर वे, जोधपुर को अपना मुख्यालय बनाकर, मरुधरा एवं मरुवाणी की सेवा में प्राणपण से लग गए। वस्तुतः राजस्थान में कोने-कोने की शोध-यात्रा करते हुए जिस परिश्रम और निष्ठा के साथ वहाँ के भाषा-साहित्य और ऐतिहासिक अवशेषों पर उन्होंने कार्य किया वह अविस्मरणीय है। जलवायुगत प्रतिकूलता में भी घोड़े और ऊँट की सवारी लेकर रेतीले टीलों में भटकते हुए उन्होंने पुरातत्त्व की वस्तुओं, मुद्राओं, हस्तलिखित पोथियों एवं काव्य-दर्शन ग्रन्थों का संग्रह किया और उनके विवेचन तथा अनुवाद में अहर्निश रत रहकर माँ भारती की आरती उतारी।

सन् १६१६ में उन्हें अपनी माता की बीमारी का समाचार मिला। उनका हृदय मातृ-दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा। अतः १७ अप्रैल १६१६ को वे बम्बई से जहाज द्वारा इटली के लिये चल पड़े। १६ मई को उदीने पहुँचने पर उन्होंने कसीगनैको स्ट्रीट पर स्थित अपने पुराने मकान में श्मशान की नीरवता पायी। पूछ-ताछ करने पर ज्ञात हुआ कि उनके पहुँचने से एक सप्ताह पूर्व ही उनकी माता का देहान्त हो गया और पिता उदीने छोड़कर फ्लोरेंस में रहने लगे। टेसीटरी को इस घटना से हार्दिक दुःख पहुँचा और वे किसी प्रकार इटली में चार मास व्यतीत कर भारत लौट आये। १ नवम्बर सन् १६१६ को भारत पहुँचकर वे पुनः अपने कार्य में व्यस्त हो गये। विधि का विधान कुछ और था कि इसी बीच वे निमोनिया से पीड़ित हो गये और लाख उपचार के बावजूद २२ नवम्बर सन् १६१६ को

इस नश्वर संसार में अपनी अशेष और शाश्वत कीर्ति छोड़कर सदा-सर्वदा के लिए विदा हो गये।

व्यक्तित्व

डॉ० टेसीटरी का जीवनवृत्त सरलता, सात्विकता और संवेदनशीलता के साथ ही दृढ़ता समर्पण, आस्तिकता और आदर्शवादिता की जीवंत कथा है। श्री अक्षयचन्द्र शर्मा ने इनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही लिखा है कि डॉ० टेसीटरी को एक सैनिक का हृदय, कलाकार का हाथ, वैज्ञानिक का मस्तिष्क, कवि की स्वप्नदर्शी आँखें और यायावर के गतिशील चरण प्राप्त थे। इसीलिए भारतीय भाषा-साहित्य, इतिहास और संस्कृति में वे विशेषरूप से रम सके। वस्तुतः पद्मिनियों का सौन्दर्य, यहाँ के ऐतिहासिक खंडहरों की गौरव-गाथा, राजस्थानी शूरमाओं की रण-कथा, सतियों के गीत और वीरों के पवाँड़े उनके प्राणों में समा गये थे। बाल्यकाल से ही उनका भावुक मन भारत के विषय में कल्पना किया करता था। भारत आकर यहाँ के भाषा-साहित्य का अध्ययन करने की उत्कट अभिलाषा से प्रेरित होने के कारण उन्होंने इटली में संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओं का अध्ययन किया; प्रयत्नपूर्वक यहाँ आकर, एक अलमस्त फकीर की जिन्दगी बितायी और अन्ततः वे चिरनिद्रा का वरण कर यहीं की माटी में रम गये।

टेसीटरी महोदय के पत्र-साहित्य से प्रमाणित होता है कि वे अपनी रहनी से सात्विक और सर्वथा भारतीय जैसे थे। वे मदिरा का सेवन नहीं करते थे। मांसाहार उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं था। इटली में रहते हुए भी उन्होंने मांसाहार छोड़ दिया था, किन्तु, वहाँ की प्रकृति के कारण डॉक्टरों की सलाह पर उन्हें पुनः प्रारम्भ करना पड़ा। भारत आने के बाद वे सर्वथा शाकाहारी हो गये थे। जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरि को सम्बोधित एक पत्र की निम्नांकित पंक्तियों से उनकी प्रवृत्तिगत सात्त्विकता का परिचय मिलता है— "आप की शांत मूर्ति मेरे नेत्रों में स्थापित हो गयी है। जब कभी मैं आपके पत्र और आपकी पुस्तकें पढ़ता हूँ या उनके बारे में सोचता हूँ तो तुरंत आपकी शांत मूर्ति मेरे नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित होती है। मैं वास्तव में सोचता हूँ कि आप जैसा शांत एवं उदार पुरुष इस पृथ्वी पर कोई नहीं मिलेगा। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने आपको आपके अर्पण कर दूँ।" एक दूसरे पत्रांश से भी उनकी सात्विक निष्ठा और भावुकता का पता चलता है—

"मेरी भारत आने की अतीव तीव्र उत्कंठा है।......अगर सफल हो गया तो शीघ्र ही आपके चरणारविन्दों की पूजा करने के लिए आपके पास अवश्य आऊँगा। मैं हूँ आपका आज्ञाकारी सेवक—एल्० पी० टेसीटरी।"

टेसीटरी के अन्त:करण में मातृभाषा और मातृभूमि के प्रति अनन्य प्रेम था। भारत में प्रवास करते हुए उन्हें अपने देश की उदात्त परम्पराओं का सदैव ध्यान रहता था; साथ ही वे यहाँ के निवासियों को भी स्वदेशाभिमान की भावना से भावित देखना चाहते थे। एक बार एक मारवाड़ निवासी स्टेशन मास्टर को उसकी अंग्रेजीप्रियता के लिए फटकारते हुए इन्होंने कहा था कि "एक विदेशी होते हुए भी मुझे तुम्हारी मारवाड़ी भाषा से बहुत प्रेम है। तुम्हारे देश के प्रति बहुत बड़ी भावना लेकर मैं अपनी मातृ-भूमि से यहाँ आया हूँ। किसी राजसत्ता का मद भरकर अथवा खाने-पीने की इच्छा से यहाँ नहीं आया हूँ। तुम्हें, तुम्हारे देश को और भाषा को विदेशियों के बीच उचित सम्मान देने के लिए मैं तुम्हारे साथ मारवाड़ी में बातचीत कर रहा हूँ। मैं इसमें अपने देश इटली की उदार भावना और तुम्हारे देश की प्रतिष्ठा समझता हूँ। इटली और भारत विश्व-संस्कृति के दो दृढ़ स्तम्भ हैं। दोनों देश महान् हैं। उनकी महान् परम्परायें हैं। भारत का यह देश—मारवाड़ अपनी आनबान का धनी है और इसकी आनबान अपनी भाषा मारवाड़ी में है। इस भाषा को बोलते हुए किसी को भी गर्व होना चाहिए। पर तुम एक मारवाड़ी होते हुए भी उसको बोलने में शर्माते हो। तुमको अपने देश और अपनी मातृ-भाषा का अभिमान होना चाहिए। तुम्हारी यह भाषा जीवित रही तो तुम, तुम्हारी संस्कृति और तुम्हारा देश जीवित रह सकेगा। मुझे तुम्हारे देश का ऐसा पतन देखकर शर्म आती है।" इन शब्दों में स्नेह—सौहार्द और परम आत्मीयता के साथ ही उत्कट देश-प्रेम की भावना भरी हुई है जो विरले ही लोगों में पायी जाती है।

टेसीटरी की विनोद-प्रियता भी अविस्मरणीय है। जब कभी वे विनोद की मनोभूमि में होते थे तब हास्य का सागर लहराने लगता था। श्री जुगल सिंह खीची ने एक संस्करण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि एक दिन डॉ० टेसीटरी कहने लगे कि संस्कृत सीखने में लिंग—भेद के मारे मैं तंग आ गया था। हिन्दी या राजस्थानी में बोलते या लिखते समय लिंग—भेद का भय-भूत अब भी मेरे पीछे पड़ा रहता है। प्रारम्भ में मेरी धारणा थी कि अकारान्त नाम पुल्लिंग, आकारान्त और ईकारान्त स्त्रीलिंग होते हैं, अतएव

मैं 'मेरा मूँछ और उसका मरोड़' कहा करता था और मेरे लिए मथुरा की तरह आगरा भी अच्छी नगरी थी। एक बार मेरे मुख से 'अमुक पुरुष की बहनोई आने वाली' निकल गया था। मेरा नाम ईकारान्त होने के कारण कलकत्ते का एक पोस्टमैन मेरे अर्दली से पूछ उठा था कि टेसीटरी कहाँ की रहने वाली है।" अपनी मूंछ मरोड़ते हुए और हँसते हुए टेसीटरी ने कहा कि तब मुझे महाभारत के शिखंडी का नाम स्मरण हो आया। इस प्रकार भाषा के निगूढ़ प्रदेश में विचरण करने वाले इस मनीषी में हास्य-व्यंग्य और सरसता की अन्तर्धारा भी प्रवाहित थी।

कृतित्व

डॉ० टेसीटरी की प्रतिभा से दसों दिशाएँ आलोकित हो उठीं। उनके कृतित्व का स्मरण हम समीक्षक, भाषा वैज्ञानिक, सम्पादक, और प्राच्यविद् के साथ ही कोशकार के रूप में भी करते हैं। वैसे तो उनका भाषा वैज्ञानिक रूप सर्वाधिक मुखर है किन्तु साहित्य-जगत् का टेसीटरी नाम से प्रथम परिचय एक समीक्षक के नाते ही हुआ था। उन्होंने रामचरितमानस और रामायण का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर एक ओर तुलसीदास के 'नानापुराण निगमागम सम्मत' रूप पर विभिन्न प्रकार से अध्ययन का द्वार खोला और दूसरी ओर रामचरितमानस के वस्तु-संघटन और कलागत वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हुए यथोचित उद्धरणों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि तुलसीदास ने मानस की मुख्य कथा का चयन तो वाल्मीकि रामायण से किया, किन्तु उसका अंधानुकरण कभी नहीं किया। उन्होंने अपने आराध्य राम के व्यक्तित्व की अलौकिकता और अपनी विशिष्ट दार्शनिक विचारधारानुकूल कथा को नया रूप-रंग दे दिया है। वस्तुतः आज से लगभग साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व डॉ० टेसीटरी ने जो स्थापनाएँ की थीं वे बहुत ही साहसपूर्ण थीं और उनका महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है।

इसी प्रकार राठौड़राज पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' को साहित्य-जगत् के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए उन्होंने भूमिका-भाग में कहा कि 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' राजस्थानी साहित्य रूपी रत्न-गर्भा खान के अत्यन्त द्युतिमान् रत्नों में से एक श्रेष्ठ रत्न है। सम्राट् अकबर के तेजोमय शासन काल में रचित राजस्थान-भारती की इस उत्कृष्ट काव्यकृति को उस समय से अब तक के साहित्य - समालोचकों और निर्णायकों ने सर्वसम्मति से हिन्दी साहित्य में सर्वोत्तम स्थान दिया है। यह डिंगल साहित्य की सर्वांग

सम्पूर्ण कृति है; काव्य-कला की दक्षता का एक विचक्षण नमूना है जिसमें आगरे के ताजमहल की तरह भाव की एकाग्र सहजता के साथ अनेकानेक काव्यगुण-विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है। टेसीटरी महोदय की सजग समीक्षा-दृष्टि का परिचय देने वाली 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की मार्मिक भूमिका के कारण आज भी उसके अध्येता उनका नाम श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं और मेरा पूर्ण विश्वास है कि निष्पक्ष एवं तुलनात्मक विवेचन और वैज्ञानिक निर्णय की दृष्टि से 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण' तथा 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की भूमिका अनन्त काल तक स्मरणीय रहेगी।

भाषाविद् के रूप में डॉ० टेसीटरी का नाम सर्वाधिक चर्चित है। टेसीटरी से पूर्व आधुनिक भारतीय भाषाओं पर ऐतिहासिक व्याकरण लिखने का कार्य किसी भाषा वैज्ञानिक ने कभी छुआ तक नहीं था। उन्होंने अपने 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का व्याकरण' नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना में स्वयं लिखा है "पहले पहल मुझे कुछ प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के हस्तलिखित ग्रन्थ खोज में मिले तो मुझे लगा कि इनमें पाये जाने वाले नवीन व्याकरणिक रूप नव्य भारतीय भाषाविज्ञान के भारतीय विद्यार्थियों के लिये अत्यंत लाभदायक हो सकते हैं। परन्तु जब मैंने यह कार्य अपने हाथों में लिया तथा उन हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन करने लगा, तो मैंने देखा कि इनसे उन अनेक व्याकरणिक रूपों की व्याख्या की जा सकती है जिनकी व्युत्पत्ति का या तो पता नहीं है अथवा अभी ध्यान नहीं दिया गया है। इसलिये मैंने अपनी पूर्ववर्ती योजना का विस्तार, प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के ऐतिहासिक व्याकरण के रूप में, करने का निश्चय किया। इसीको आज सर्व साधारण के सम्मुख वर्तमान निबंध के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह विषय, अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषा के विकास के इतिहास के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मुझे आशा है कि मेरा श्रम भारतीय भाषा-विज्ञान की इस शाखा में रुचि लेने वाले सभी विद्वानों के लिए स्वीकार्य होगा। जहाँ तक अपूर्णताओं का सवाल है, ये इस क्षेत्र में ऐसे प्रत्येक अनुशीलन के साथ आगामी अनेक वर्षों तक लगी रहेंगी। मैं सोचता हूँ कि प्रस्तुत विषय में मुझे विशेष रूप से क्षमा किया जाना चाहिए क्योंकि जहाँ तक मुझे मालूम है, नव्य भारतीय भाषा के इस महत्त्वपूर्ण विषय पर, भारत में कभी गये बिना ही, काम करने का साहस करने वाला मैं पहला यूरोपीय हूँ। इसलिए भारतवासियों की सहायता से मैं सर्वथा वंचित रहा जो कि ऐसे किसी काम के लिए अपरिहार्य समझी जाती है।" वस्तुतः भाषा विज्ञान के

क्षेत्र में जो कार्य सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रारम्भ हुआ था, डॉ० टेसीटरी ने उसे और भी आगे बढ़ाया। प्रख्यात भाषाविद् डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने डॉ० टेसीटरी के इस कार्य के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि "पुरानी राजस्थानी, उच्चारण-रीति, रूप तत्त्व और वाक्य-रीति के पूरे विचार के साथ टेसीटरी की आलोचना ऐसी महत्त्वपूर्ण है कि उसे यदि राजस्थानी, मारवाड़ी तथा गुजराती भाषा तत्त्व की बुनियाद कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।" उक्त ग्रन्थ की अनुवादकीय विज्ञप्ति में डॉ० नामवर सिंह ने भी लिखा है कि "पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के द्वारा टेसीटरी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की उस खोई हुई कड़ी के पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया है जिसके बिना किसी आधुनिक भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण लिखा ही नहीं जा सकता।"

सन् १९१६ में डॉ० टेसीटरी ने 'मारवाड़ी और गुजराती में 'ई' और 'ओ' की व्यापक ध्वनि' शीर्षक निबंध लिखकर अपने भाषा विषयक कार्य को और भी आगे बढ़ाया। पंचम गुजराती साहित्य परिषद् के अवसर पर उन्होंने 'प्राचीन गुजराती और पश्चिमी राजस्थानी' शीर्षक एक दूसरा निबंध भी प्रस्तुत किया था। खेद है कि उस 'पथिकृत ऋषि' ने असमय में ही जीवन-लीला-संवरण कर दिया अन्यथा व्याकरण और भाषाशास्त्र के क्षेत्र में उसने और भी महत्त्वपूर्ण कार्य किये होते।

पाठालोचन और वैज्ञानिक सम्पादन के क्षेत्र में भी डॉ० टेसीटरी की सेवाएँ अप्रतिम हैं। सर्वप्रथम उन्होंने 'राठौर रतन महेशदासोतरी वचनिका का सम्पादन अपने हाथ में लिया और विभिन्न स्थानों से उसकी १२, १३ प्रतियों का संग्रह कर उनके आधार पर पाठ-निर्धारण करने के पश्चात् डिंगल टिप्पणी और कोश के साथ उसे प्रकाशित करवाया। 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' का सम्पादन करते हुए उन्होंने उसकी आठ हस्तलिखित प्रतियों को आधार बनाया था और यथा-स्थान उस अनमोल ग्रन्थ की ढूंढाड़ी और संस्कृत टीकाओं का भी उपयोग किया था। मूल पाठ के साथ टिप्पणी और शब्दानुक्रमणिका के कारण उक्त ग्रन्थ आज भी वेलि-साहित्य के अध्येताओं के लिये अत्यंत उपादेय है। 'वेलि' का सर्वोत्तम संस्करण प्रस्तुत करने वाले डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने भी टेसीटरी वाले संस्करण को अत्यंत्त महत्त्व-पूर्ण समझा था। इसीलिए उन्होंने अपने निर्णयों की पुष्टि में उनके अभिमत पदे-पदे उद्धृत किए हैं। इसी प्रकार 'छंद राव जैतसीरो' भी डॉ०

टेसीटरी की कठिन साधना का प्रतिफल है। यह ग्रन्थ राजस्थानी साहित्य की कतिपय अत्यंत क्लिष्ट कृतियों में गिना जाता है और सामान्य अध्येता इसके नाम से भी घबड़ाते हैं। फिर भी, डॉ० टेसीटरी ने इस ग्रन्थ का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण शैली में सम्पादन किया और अपनी प्रतिभा तथा सम्पादन-कला विषयक तज्ञता का परिचय दिया। 'श्रेणिक कथा', 'कुम्भापुत्त कहा', 'सट्ठसयं, 'पउजंता सहणं', 'कल्याणमंदिर स्तोत्र', 'गौड़ीपार्श्व स्तोत्र' आदि भी इनके द्वारा सम्पादित कृतियाँ हैं।

अनेक भाषाओं के विद्वान् होने के कारण डॉ० टेसीटरी का कुशल अनुवादक होना स्वाभाविक था। अनूदित कृतियों के माध्यम से उन्होंने भारतीय साहित्य-चिंतन से यूरोपवासियों को अवगत कराया। हाल कृत 'सतसई', 'नासकेत री कथा', 'इन्द्रिय पराजय शतकम्' और 'आजाद् बख्त की कथा' आदि कृतियों का उन्होंने इटालियन भाषा में अत्यन्त सफल अनुवाद किया था।

डॉ० टेसीटरी ने भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के अध्येताओं का कम उपकार नहीं किया। उन्होंने घग्घर नदी के सूखे पाट में बीकानेर के अत्यधिक प्राचीन रंगमहल और उसके आस-पास के स्थानों की खुदाई करवायी और बहुत से महत्त्वपूर्ण सिक्के, मृण्मय भांड, टेराकोटाज, मालाओं के दाने आदि प्राप्त किये जिससे सिन्धुघाटी-सभ्यता की पुष्टि होती है। गाँव-गाँव में जाकर उन्होंने लगभग ५०० शिलालेखों का संग्रह किया और उनकी विवरणिका प्रकाशित करवायी। ये सभी वस्तुयें बीकानेर के संग्रहालय में आज भी सुरक्षित रहकर मूक भाषा में टेसीटरी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हैं। राजस्थान में रहकर अत्यन्त लगन और परिश्रम से, उन्होंने चारण-साहित्य का सर्वेक्षण कर, उसके विवरण प्रकाशित करवाये। ये वस्तुयें पुरातत्त्वविदों और अनुसंधित्सुओं के लिए अमूल्य हैं।

हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज से राजस्थानी साहित्य का वास्तविक रूप सामने आया और साथ ही राजस्थान का सांस्कृतिक एवं राजनैतिक इतिहास भी मुखर हो उठा। एतत्सम्बन्धी खोज का महत्त्व बताते हुए उन्होंने स्वयं भी लिखा है— "Almost the generality of their works being anonymous and titleless the number under which they are registered in the present catalogue will enable one easily to cite them in any work of historical research that may be compiled in future,"

सरस्वती का यह अनन्य सेवक असमय में ही हमारे बीच से उठ गया अन्यथा 'भारतीय भाषाओं का प्रामाणिक कोश' और 'राजस्थानी लोक-साहित्य' पर भी उसकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाश में आयी होतीं। डॉ० टेसीटरी द्वारा लिखित डायरी भी हिन्दीसाहित्य की एक महत्त्वपूर्ण निधि है।

प्रस्तुत लेखक की धारणा है कि यदि डॉ० टेसीटरी की सम्पूर्ण रचनाओं को व्यवस्थित रूप से प्रकाश में लाया जाय तो राजस्थानी भाषा साहित्य और इतिहास के अत्यंत महत्त्वपूर्ण अध्यायों पर नया प्रकाश पड़ेगा और उसकी गौरववृद्धि होगी। २१, २२ नवम्बर सन् १९५६ को जब 'सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट', बीकानेर के तत्त्वावधान में डॉ० टेसीटरी का श्रद्धांजलि-दिवस मनाया गया और उसमें डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भाषाविद् और भारत स्थित इटालियन दूतावास के कॉउन्सिल डॉ० तिबेरिओ तिबेरी भी उपस्थित हुए तब यह विश्वास दृढ़ हुआ था कि अब डॉ० टेसीटरी की रचनाओं को पुनः व्यवस्थित रूप से प्रकाशित कराने का प्रयत्न भी होगा। उस समय उनकी बीकानेर स्थित समाधि का जीर्णोद्धार और 'राजस्थान भारती' एवं 'संयुक्त राजस्थान' का डॉ० टेसीटरी विशेषांक-प्रकाशन बड़े उत्साह के साथ हुआ किन्तु तदनन्तर इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हो सकी। सोचता हूँ कि उस विदेशी द्वारा प्रदत्त पूंजी को यदि हम वैसी ही परिश्रमशीलता से विकसित नहीं कर सकते तो कम से कम उसको सुरक्षित रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। आशा है कि सुधी विद्वान् इस ओर ध्यान देंगे।

प्राक्कथन

तुलसीदास कृत रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित यह निबन्ध सर्वप्रथम इटैलियन भाषा में 'जियोरनल देल्ला सोसाइटा एशियाटिक इटालियन' (भाग २४, १९११) में प्रकाशित हुआ था और अब सर जार्ज ग्रियर्सन तथा सर आर० सी० टेंपुल के उदार सुझाव पर अंग्रेजी भाषा में पुनः प्रकाशित हो रहा है। वस्तुतः यह विषय बहुत ही रोचक है, क्योंकि इसमें जिस प्रश्न को उठाया गया है, वह अभी तक अनिर्णीत अवस्था में था।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस के मूल स्रोत के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत प्रस्तुत किये गये हैं किन्तु वे सब सुनिश्चित प्रमाणों से उपस्थापित न होकर अनुमानों पर आधारित हैं। ये मत अपनी असंगतियों के कारण समस्या का समाधान करने के स्थान पर उसे और भी जटिल बना देते हैं। अभी तक इस सम्बन्ध में दो अतिवादों का प्रतिनिधित्व रहा है : (क) उन विद्वानों के द्वारा जिनका रामचरितमानस के सम्बन्ध में सम्यक् परिज्ञान नहीं है और जो प्रायः निश्चित रूप से इस मत के हैं कि यह रामायण का बहुत ही अपकृष्ट और संकुलित पुनर्कथन है जिसमें लेशमात्र भी मौलिकता नहीं है और (ख) उन विद्वानों द्वारा जो रामचरितमानस से न्यूनाधिक मात्रा में अभिज्ञ हैं और जिन्हें, इसके वाह्य स्वरूप तथा इसमें अंकित तथ्यों की भिन्न प्रकार से व्याख्या करने के कारण, भ्रम उत्पन्न हो गया है तथा जिन्होंने यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि तुलसीदास ने मानस की रचना में अन्यान्य स्रोतों का उपयोग किया है और उन पर उनके श्रेष्ठ अग्रगामी वाल्मीकि का या तो कोई ऋण नहीं है अथवा बहुत ही कम है। अतः, अतिशयतापूर्ण ढंग से

कथित इन दोनों मतों के बीच उचित मार्ग का निर्धारण कर रामचरितमानस के स्रोतों में रामायण को उचित स्थान देना आवश्यक हो गया है।

इस समस्या का समाधान किसी पूर्वप्रत्यय अथवा सामान्य धारणाओं के भ्रमात्मक प्रभाव से मुक्त रहकर अपने को सुनिश्चित तथ्यों के तटस्थ परीक्षण तक सीमित रखने से ही हो सकता है। यह कार्य बहुत ही धैर्यसाध्य है। इसके लिये सर्वप्रथम हमें रामचरितमानस की रामायण से छंदशः तुलना करके संस्कृत पाठ से इसके सभी अनुबंधित स्थलों का निर्धारण करना होगा। इसके अनंतर अनुबंधित एवं अननुबंधित स्थलों को एक साथ करके हमें यह देखना होगा कि रामायण को रामचरितमानस का मूलस्रोत माना जा सकता है या नहीं। किंतु यह पद्धति बहुत दुरूह है, क्योंकि तुलसी ने अपने को रामायण के किसी एक संस्करण तक सीमित नहीं रखा है। अतः, यह आवश्यक है कि हम रामायण के दोनों मुख्य संस्करणों को आधार बनाकर जाँच-पड़ताल करते हुये यह देखें कि रामचरितमानस के किन प्रसंगों में रामायण का कौन सा संस्करण निष्पन्न है। इस संबंध में दूसरी कठिनाई वास्तविक एवं प्रतीयमान असंगति को पहचानने और उनमें भेद करने की है। उदाहरणार्थ रामायणेतर सूत्रों से लिये गये विवरणों और रामायण से लिए गये उन विवरणों के बीच अन्तर करना कठिन है जो या तो तुलसी के धार्मिक सिद्धान्तों अथवा किसी अन्य कारण से रामायण से भिन्न प्रतीत होते हैं। पाठक इस बात का निर्णय स्वयं करेंगे कि प्रस्तुत अध्ययन में उपर्युक्त प्रकरणों का समावेश किस हद तक हुआ है, साथ ही उन्हें यह भी विदित हो जायेगा कि राम का चरित्रांकन करने के लिये तुलसीदास ने रामायण को मूलस्रोत के रूप में प्रयुक्त करते हुये अपने को वाल्मीकि की कला से मुक्त रखने का कितना प्रयास किया है। इसलिये कुल मिलाकर रामायण को रामचरितमानस का कलागत आदर्श न मानकर केवल सूचना-स्रोत ही कहा जा सकता है।

वस्तुतः केवल रामायण को दृष्टि में रखकर विचार करने की प्रवृत्ति उपर्युक्त निर्णय को अस्थायित्व प्रदान करती है। हमें विदित है तुलसीदास ने रामायण के रहस्यात्मक पुनर्कथन 'अध्यात्मरामायण' का भी उपयोग किया है, जिसे 'ब्रह्मांड पुराण' में सम्मिलित किया गया है। जब इस सूत्र को लेकर खोजबीन की जायगी तभी रामचरितमानस के स्रोतों में रामायण का प्रामुख्य निश्चित रूप से प्रतिष्ठित हो सकेगा। प्रस्तुत लेखक सम्भवतः निकट भविष्य में इस विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगा। किन्तु समग्र रूप में यदि रामायण की पूर्ववर्तिता को प्रतिबाधित करना पड़े तो भी हमारे सामान्य

निर्णय अपरिवर्तित ही रहेंगे और तुलसीदास द्वारा वाल्मीकि के काव्य का सीधा और विशद प्रयोग करने के पक्ष में संगृहीत प्रमाण के रूप में प्रस्तुत निबन्ध का महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा।[1]

—एल० पी० टेसीटरी

---

(१) प्रस्तुत निबन्ध का ईक्ष्यशोधन करते समय मुझे सर जार्ज ग्रियर्सन ने कृपापूर्वक सूचित किया कि उत्तर प्रदेशांतर्गत बलिया निवासी श्री बलभद्रप्रसाद शुक्ल और उनके सहयोगी तीन अन्य पंडित तुलसीदास कृत रामचरितमानस का एक संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें उसी शीर्षक से संस्कृत श्लोकों में एक दूसरी तत्संवादी कविता भी है, जिससे आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनमें से एक दूसरी की अनुवाद है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने इस संस्करण के 'अरण्य' और 'सुन्दरकांड' देखे हैं और उन्होंने दोनों वर्तनों को व्यावहारिक रूप से अक्षरशः एक पाया है। संपादकों ने संस्कृत वर्तन को मूल रूप स्वीकार किया है। उन्होंने अपने इस मत का आधार, मानस की भूमिका में कथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तुलसी द्वारा प्रस्तुत मुख्य रूप से उन पंक्तियों को बनाया है जिनमें उन्होंने यह कहा है कि मैंने यह कथा अपने गुरु से सुनी थी किन्तु उस समय बाल्यावस्था के कारण मैं समझ नहीं सका था; बाद में मैंने जब उसे समझा तब भाषाबद्ध किया--

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकर खेत।
समुझी नहिं तसु बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषा बद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥
(१, ३०-३१)

संपादकों ने बालकांड के आमुख में उक्त संस्कृत पांडुलिपि की पूर्ण विवृति देने का आश्वासन दिया है। सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार हमें तब तक धैर्य धारण करना चाहिये जब तक कि संस्कृत पाठ प्रकाश में न आ जाय। जो भी हो, यह पूर्णतया निश्चित है कि एक का वर्तन दूसरे का रूपांतर है, किन्तु सम्प्रति यह कहना असम्भव है कि इनमें से मूल वर्तन कौन है। मुझे तो संस्कृत पाठ ही रूपांतर प्रतीत होता है क्योंकि उसमें तुलसीदास के वर्तन के समान कसावट या चुस्ती नहीं है। लेखक को हिन्दी वर्तन के मेल में लाने के लिये यत्र-तत्र श्लोकों में अनावश्यक शब्द भी पिरोने पड़े हैं। किन्तु दूसरी ओर यह तर्क भी प्रस्तुत किया जा सकता है कि तुलसीदास ने संस्कृत वाले मूल पाठ को ही संक्षिप्त करके सुधार दिया है। इस स्थिति में यह पाठ संस्कृत का रामचरितमानस है, जिसको हमें अनिवार्यतः प्रथम

रचना मानना चाहिये और कदाचित् यह रामचरितमानस के हिन्दी रूप का एकमात्र आधार है। किन्तु ऐसा मान लेने पर भी हमारा यह निष्कर्ष किसी प्रकार दुर्बल नहीं पड़ता कि तुलसीदास की कृति मुख्यतः रामायण पर आधृत है। ऐसी स्थिति में हमें रामचरितमानस को स्वयं तुलसी द्वारा आनीत न मानकर एक ऐसी पूर्ववर्ती रचना का तुलसीकृत अनुवाद मानना पड़ेगा जो मुख्यतः वाल्मीकि पर आधारित थी।

रामचरितमानस
और
वाल्मीकि रामायण

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥[२]

रामचरितमानस की भूमिका के उपर्युक्त श्लोक में तुलसीदास ने स्वयं ही पाठकों को उन सूत्रों की सूचना दी है जिनसे उन्होंने तत्त्व ग्रहण किये हैं। वास्तव में यहाँ पर उन्होंने बहुत ही स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उन्होंने रामायण से प्रभाव ग्रहण करने के साथ ही पुराणों और पवित्र धर्मग्रन्थों से भी अपने अनुकूल तत्त्वों को स्वीकार किया है। संप्रति 'क्वचिदन्यतोऽपि' की मीमांसा न की जाय तो भी यह तथ्य सर्वविदित है कि उपर्युक्त अवतरण में तुलसी ने स्वयं ही रामायण को मुख्य स्रोत के रूप में उद्धृत किया है और यह स्पष्ट घोषणा की है कि उन्होंने उससे पर्याप्त सामग्री लेकर उसे, अपनी आध्यात्मिक भावनाओं से समन्वित कर, काव्य का भव्य रूप प्रदान कर दिया है। उक्त साक्ष्य से अंततोगत्वा इसी प्रकार का अर्थ ध्वनित होता है। दूसरी ओर इससे हमें इसके अतिरिक्त भी बहुत सी सूचनायें मिलती हैं। यही कारण है कि 'रामचरितमानस' का प्रत्येक सजग पाठक स्वयमेव इसी निर्णय पर पहुँचता है कि तुलसीदास ने अपने महान् पूर्वज वाल्मीकि के पग-चिह्नों का अनुगमन किया है।

वाह्य रूप से देखने पर इस प्रकार का निश्चयात्मक कथन सुनने वालों को एक असंगत विरोधाभास सा प्रतीत होगा; क्योंकि इन दोनों कृतियों के बीच में एक बहुत बड़ा अंतराल है। दोनों का वातावरण भिन्न है, दोनों में समाज-जीवन का चित्रण भिन्न है; यही नहीं, अपने पाठकों पर दोनों का प्रभाव भी इतना भिन्न है कि एक की दूसरी पर काल्पनिक निर्भरता के अतिरिक्त दृष्टि-पथ में और कुछ नहीं आता। किन्तु, इस प्रसंग में हमें ध्यान रखना चाहिये कि किसी कृति की दूसरी कृति पर निर्भरता के सम्बन्ध में निर्णयन के लिये वस्तुगत तथ्य ही सर्वोत्तम मानदंड हैं, सौन्दर्यात्मक प्रभाव नहीं। इस लिये असंदिग्ध विधेयात्मक मानदंडों को दृष्टि में रखते हुये हमारे कथन का पर्यवेक्षण किया जाना चाहिये। सच यह है कि जहाँ तक राम के जीवन का

(२) प्रस्तुत उद्धरण और रामचरितमानस के अगले सभी उद्धरण काशी नागरी प्रचारिणी सभा (१९०३) के संस्करण से लिये गये हैं।

सम्बन्ध है, दोनों काव्यकृतियों में आख्यान का सूत्र मुख्य रूप से एक है। तुलसीदास ने घटना के वृत्तान्त को वाल्मीकि से लेकर उसे, इच्छानुसार संशोधित-परिवर्द्धित कर अपने सिद्धांतानुसार, नया रूप-रंग दिया है किन्तु उसके उद्देश्य, तारतम्य और ऐतिहासिक तत्त्व को विकृत नहीं होने दिया है। इससे कोई भी यह सोचने के लिये अभिप्रेरित हो सकता है कि तुलसीदास को ऐतिहासिक दृष्टि से रामायण की प्रामाणिकता में पूर्ण विश्वास था। इसीलिये जब तक उनके नैतिक एवं धार्मिक विचारों में स्पष्ट रूप से बाधा नहीं उपस्थित होती तब तक वे उसके किसी भी तथ्य में हेर-फेर नहीं करते। यही कारण है कि तुलसीदास ने ऐसे वर्णनों को भी उसी रूप में स्वीकार कर लिया है जो रामायण के बृहत् महाकाव्यत्व के लिये तो अनुकूल थे किन्तु रामचरितमानस की संक्षिप्तता के बीच बहुत ही विचित्र और बेकार से लगते हैं। यही नहीं, तुलसीदास उन पात्रों के सामान्य से सामान्य कार्यव्यापार और कथन में भी गुणों का आरोप करने की दिशा में अत्यधिक ध्यान देते हैं, जिन्हें बाल्मीकि ने अपने प्रतिनिधि पात्र के रूप में प्रस्तुत किया था। इसीलिये तुलसीदास कभी भी घटनाओं के क्रम[3] को नहीं बदलते और इस सम्बन्ध में वे इतना सावधान रहते हैं कि रामायण के किसी प्रसंग और महत्त्वपूर्ण अवतरण को तब तक स्थानांतरित नहीं करते जब तक कि उसे उचित स्थान न प्राप्त हो जाय।

---

(३) इस नियम के कुछ अपवाद हैं जो मुख्य रूप से बालकांड और अयोध्या कांड में मिलते हैं। नीचे उपर्युक्त दोनों सर्गों से अत्यधिक ध्यानाकर्षित करने वाले तीन अपवाद उद्धृत किये जाते हैं :-

(i) तुलसी ने राम और जामदग्न्य-प्रसंग को धनुर्भंग के तत्काल बाद और दशरथ के मिथिला पहुंचने से पूर्व प्रस्तुत किया है। [वाल्मीकि ने इसे राम और दशरथ के अयोध्या लौटते समय घटित होते हुए दिखाया है।]

(ii) तुलसीदास ने विश्वामित्र को दशरथ के साथ मिथिला से अयोध्या के लिये प्रस्थान करवाकर अयोध्या में उनका कई दिन का प्रवास दिखाया है। अयोध्या में ही वशिष्ठ और वामदेव के द्वारा विश्वामित्र का वृत्तांत वर्णित हुआ है। [वाल्मीकि ने मिथिला से विश्वामित्र का प्रस्थान दशरथ से पहले दिखाया है और उनका वृत्तांत मिथिला में सदानन्द के द्वारा कहलवाया है।]

(iii) तुलसीदास ने निषाद के द्वारा तीनों बनवासियों के साथ गंगा पार करने और फिर उनके साथ एक या दो मंजिल तक रहने का वर्णन किया है। [वाल्मीकि ने राम के द्वारा गुह और सुमंत्र को गंगा पार करने से पहले ही बिदा करवा दिया है।]

अपने मूल स्रोत के प्रति तुलसी की निष्ठा का यह सामान्य नियम मानस के छठें सर्ग[४] में विशेष रूप से अपवादित है, जहाँ कार्यव्यापारों का क्रम एकदम उच्छिन्न हो गया है; एक युद्ध का वर्णन प्रायः दूसरे युद्ध के साथ अन्यथा जुड़ गया है और एक योद्धा का शौर्य दूसरे पर आरोपित हो गया है। किन्तु यदि हम केवल यह मान लें कि तुलसीदास बाल्मीकि के युद्धकांड की संभ्रम में डाल देने वाली जटिलता के बीच से अपना मार्ग नहीं निकाल सके हैं और प्रायः घटनाओं के चक्रव्यूह में अपने को भूल गये हैं, तो भी प्रस्तुत प्रसंग में यह अपवाद उपर्युक्त नियम को निर्बल नहीं बनाता है; साथ ही इसकी आसानी से व्याख्या भी की जा सकती है। यह उपकल्पना इस जटिल सर्ग के विषय को भली प्रकार आत्मसात् करने की कठिनाई के मेरे व्यावहारिक अनुभव से जुड़ी है; यद्यपि सुविधाजनक प्रकाशनों एवं सहायक सामग्रियों के कारण आजकल के अध्ययनार्थियों के लिये किसी विषय को समझना मध्य-कालीन कवियों की अपेक्षा अधिक सुगम है।

किन्तु लंकाकांड[५] और रामचरितमानस के अन्य सर्गों में बिखरी हुई वाल्मीकि के पथ से होने वाली कतिपय अन्य विच्युतियों को, जो सर्वत्र

संभव है कि रामचरितमानस में उपर्युक्त प्रकार के घटनाक्रम - परिवर्तन तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त अन्यान्य स्रोतों के प्रभाव से हो गये हों; किन्तु इस प्रकार के सभी परिवर्तनों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ रामचरित-मानस में लक्ष्मण को राम के निर्वासन का समाचार उस समय मिलता है जब सीता को अपने पतिदेव के साथ रहने की अनुमति मिल जाती है (२।७०।१-२)। सामान्यतः यह असंगत है कि राम के अनन्य सहयोगी लक्ष्मण को यह समाचार अयोध्या के नागरिकों के बाद मिला, जिनकी व्यथा का वर्णन तुलसीदास ने बहुत पहले ही कर दिया था। स्पष्ट है कि तुलसीदास अपनी अत्यधिक सूत्रात्मक शैली में यथास्थान लक्ष्मण का उल्लेख करना सर्वथा भूल गये और उन्हें अपनी यह चूक लक्ष्मण को इस बात से अवगत करवाकर उस समय सुधारनी पड़ी जब राम के द्वारा सीता को बन में साथ-साथ रहने की अनुमति मिल चुकी थी।

४. बालकांड का पूर्वार्द्ध और लगभग सम्पूर्ण उत्तरकांड वस्तुतः प्रस्तुत निबन्ध की विषय-सीमा के बाहर है क्योंकि रामायण में इनके संवादी स्थल नहीं हैं। ये अंश रामचरितमानस में अतिरिक्त रूप से संकलित हैं।

५. संभवतः युद्धकांड के शीर्षक को लंका में बदलना अकारण नहीं हुआ था।

अकारण नहीं हैं, पृथक् कर देने पर भी संस्कृत रामायण के वर्णनों में निहित ऐतिहासिक और कालक्रमिक सामग्री के प्रति तुलसी की सुदृढ़ निष्ठा का तथ्य पूर्ववत् बना रहता है। तुलसी की यह निष्ठा इस प्रकार की है कि इसका कोई दूसरा प्रमाण नहीं है। इस सम्बन्ध में, संभवतः, मात्र इतना ही निवेदित करना पर्याप्त होगा कि तुलसीदास रचना के क्षणों में इस उद्गम-सूत्र को सदैव अपने पास रखते थे और अपनी स्मृति के विफल होने पर उसका आश्रय लेते रहते थे।[६] दोनों काव्यकृतियों की छंदशः तुलना करने का धैर्य रखने वाला कोई भी परिश्रमशील पाठक रामायण के जंगल में से तुलसी की सम्पूर्ण पदयात्रा का सरलतापूर्वक पता लगा सकता है और उनकी रचना-प्रक्रिया को भली प्रकार समझ सकता है। अपने कथन की पुष्टि के लिये मैं 'रामचरितमानस' के निम्नांकित तीन अंशों को उद्धृत करना चाहूँगा जिनमें तुलसीदास ने विशुद्धता के उद्देश्य से वाल्मीकि के काव्य-विवरणों को अपरिवर्तित रखा है जो अपने संस्कृत रूप में तो पर्याप्त तर्कसंगत हैं किन्तु हिन्दी में कथमपि समीचीन नहीं हैं और देखने में विचित्र नहीं तो कम से कम अतिरिक्त अवश्य जान पड़ते हैं—

(१) सोपान २, १० में दशरथ के आदेशानुसार वशिष्ठ राम के महल में गये और उन्हें राज्यारोहण से पूर्व होने वाले अनुष्ठानों को करने के लिये कहा। इस वर्णन में तुलसीदास ने इतना और बढ़ा दिया है कि राम को शिक्षा देकर वशिष्ठ राजा के पास लौट आये (गुरु सिख देइ राव पहिं गयऊ—२, १०, ४ अ)। यह विवरण वाल्मीकि के वर्णन की समरूपता की दृष्टि से देखने पर सर्वथा निष्प्रयोजन है और अपने काव्य को यथासंभव सामासिक बनाने का तुलसी ने जो सतत प्रयत्न किया उसके अनुरूप नहीं है।

६. सर जार्ज ग्रियर्सन ने प्रस्तुत निबन्ध के इटालियन संस्करण पर प्रेषित अपनी टिप्पणी (ज० रा० ए० सो०, १९१२, पृ० ७९४–७९८) में मेरी इस मान्यता को सर्वांश में औचित्यपूर्ण नहीं माना है; जिसके अनुसार तुलसीदास के पास रामायण की कोई पाण्डुलिपि थी जिसका उन्होंने आद्योपांत अनुसरण किया था; क्योंकि वे ऐसा अनुभव करते हैं कि एक भारतीय कवि द्वारा इस स्तर पर कार्य करने की बात सोची ही नहीं जा सकती। मैं महसूस करता हूँ कि मुझे डॉ० ग्रियर्सन की इस बात को हृदय से स्वीकार करना चाहिये। उपर्युक्त सम्बन्ध में मेरी धारणा सामान्यतः इस तथ्य पर आधारित थी कि मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वाल्मीकि के काव्य में वर्णित घटनाओं के सम्पूर्ण अनुक्रम को हू-बहू उसी रूप में पुनरुत्पादित करना तुलसी की स्मरणशक्ति का काम है।

२. सोपान ६, २७ में तुलसी ने कहा है कि सीता का समाचार प्राप्त करने में असफल होने पर बंदरों में सुग्रीव के पास लौटने का साहस ही नहीं रहा । अतः वे सागरतट पर फैले हुये कुशासन पर बैठ गये (बैठे कपि सब दरभ डसाई ॥ ६, २७, १० ब) । प्रकट है कि इन पंक्तियों की रचना करते समय, वाल्मीकि द्वारा रामायण के चौथे अध्याय के ५५वें सर्ग में वर्णित 'प्रयोपवेशन' का ध्यान तुलसी के मन अवश्य था । किन्तु न तो वे इसका पूर्ण रूप से वर्णन कर सकते थे और न ही उसे एकदम छोड़ना चाहते थे । अतः उन्हें इस अपूर्ण वर्णन से ही संतोष करना पड़ा है जो अपने सूत्र से प्रत्यक्षतः संदर्भित न होने के कारण पूर्ण रूप से दुर्बोध हो गया है ।

३. सोपान ७, १५ में राम के राज्यारोहण का वर्णन करने के पश्चात् तुलसीदास ने फलस्तुति की है । रामायण में फलस्तुति का समावेश राज्यारोहण के तत्काल बाद हुआ है (ग[७], ६-१२८, १०५ और अनुवर्ती छंद)। तुलसी को इस बात का विचार करना चाहिये था कि युद्धकांड के साथ समाप्त होने वाली रामायण में जिस स्थान पर फलस्तुति है उसी स्थान पर रामचरित-मानस में उसका समावेश सर्वथा अनुपयुक्त है क्योंकि इसकी कथा उत्तरकांड के साथ समाप्त होती है ।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये उन स्थानों से दूसरे बहुत से उदाहरण लिये जा सकते थे जहाँ तुलसीदास ने जान-बूझकर वाल्मीकि द्वारा वर्णित प्रासङ्गिक कथाओं को अत्यंत संक्षिप्त संकेत के साथ छोड़ दिया है। इस प्रकार के संकेत प्रायः इतने अपूर्ण और अस्पष्ट हैं कि वे किसी ऐसे व्यक्ति के लिये कोई अर्थ नहीं रखते जिसके मस्तिष्क में रामायण के तत्संवादी अंश न हों । हमारी समझ में यह तब तक नहीं आ सकता कि तुलसीदास ने अपने काव्य में इन संकेतों को किस लिये थोप दिया है, जब तक कि हम तुलसीदास पर तथ्यों को उनकी समग्रता में प्रस्तुत करने की दृष्टि से अपने को प्रतिबद्ध मानने वाले एक अध्यवसायी इतिहासकार की अतिशय सजगता का आरोपण न कर दें । यहाँ भी मैं अपने को तीन उदाहरणों तक ही सीमित रखूँगा—

---

७. जैकोबी (दास रामायण, जेक० यू० इन्हाल्ट, आदि, बॉन् १८९३) को प्रमाणस्वरूप मानकर मैंने रामायण के उत्तरी संस्करण के लिये 'ग', गौड़ी संस्करण के लिये ख' और पश्चिमी संस्करण के लिये 'क' का प्रयोग किया है ।

१. विश्वामित्र की प्रासङ्गिक कथा को तुलसीदास ने पूर्णरूप से छोड़ दिया है और इतिवृत के निमित्त उसके स्थान पर निम्नांकित संकेत दिया है—

मुनि मन अगम गाधिसुत करनी।
मुदित बशिष्ठ विपुल विधि बरनी।
(१, ३५९ ६)

कुछ छंदों के बाद हमें इसकी पुनरावृत्ति भी दिखाई पड़ती है—

बामदेव रघुकुल गुरु ज्ञानी।
बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥
(१, ३६१, १)

२. अंधे यति के पुत्र (श्रवणकुमार), जिसे दशरथ ने युवावस्था में मारा था, की उपकथा तुलसीदास द्वारा सरसरी तौर पर संकेतित है—

तापस अंध साप सुधि आई।
कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥
(२, १५५, ४)

३. राम के संमुख सुग्रीव द्वारा दुंदुभि असुर को मारने की पराक्रम पूर्ण कथा और सात शाल वृक्षों के प्रसंग का, तुलसीदास ने, उल्लेख न करवा कर उसके स्थान पर मात्र इतना कह दिया है कि सुग्रीव ने राम को दुंदुभि की अस्थियों और शाल वृक्षों को दिखाया—

दुंदुभि अस्थि ताल देखराये।
(५, ८, १२)

रामायण के प्रति तुलसी की दृढ़ निष्ठा के पक्ष में अतिरिक्त प्रमाण के रूप में रामचरितमानस से इसके अलावा इस प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण एकत्र किये जा सकते हैं। किन्तु, इस विषय पर किंचिद्-विस्तारपूर्वक कहना अनावश्यक ही होगा क्योंकि आगे के पृष्ठों में उद्धृत समानांतर काव्यांशों में पाठकों को एतद्विषयक प्रचुर प्रमाण प्राप्त हो जायेंगे।[८]

---

८. मैं केवल यह टिप्पणी जोड़ना चाहूँगा कि दोनों काव्यकृतियों की पारस्परिक सम्वादिता सर्वांश में बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कम से कम यह तो मानना ही पड़ेगा कि तुलसीदास में किसी भी प्रकार से कल्पना का अभाव नहीं था। यदि उन्होंने युक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण समझा होता तो उन्हें वाल्मीकि के द्वारा निर्धारित सीमाओं को लाँघने में किसी प्रकार का सङ्कोच न हुआ होता।

इस प्रकार एक सामान्य नियम निर्धारित कर देने के बाद कि तुलसीदास ने यथासंभव वाल्मीकि की आधार-सामग्री का बिना किसी परिवर्तन के अनुसरण किया है, केवल एतत्सम्बन्धी अपवादों का सूत्रीकरण और कवि के मस्तिष्क में निहित उन बाह्यांतर अभिप्रायों का निर्धारण शेष रह जाता है जिनके कारण ये अपवाद उत्पन्न हुये हैं। प्रश्न यह है कि किस स्थिति में तुलसीदास वाल्मीकि के वर्णनों में परिवर्तन करते हैं और क्यों ?

जहाँ तक अधिकांश परिवर्तनों का सम्बन्ध है हम इन प्रश्नों को तत्काल अत्यंत विधेयात्मक ढङ्ग से उत्तरित कर सकते हैं। तुलसी का लेखन उतना वस्तुगत नहीं है जितना वाल्मीकि का। दूसरी ओर उनके सम्पूर्ण काव्य में एक नैतिक आदर्श का प्रयोग हुआ है; एक विशेष फलागम है जिसे कवि अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने का अभिलाषी था। इसीलिये उन्हें तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करना पड़ा है कि जिससे उनके पाठक राम की अलौकिकता से संतुष्ट होकर श्रद्धा एवं भक्ति की भावना से प्रणोदित हो सकें। ऐसी स्थिति में जब वाल्मीकि के द्वारा वर्णित तथ्य उनके साम्प्रदायिक विश्वास के अनुरूप नहीं प्रमाणित होते और परिवर्तन एक बाध्यता तथा उनके विशेष दृष्टिकोण के कारण सर्वथा औचित्यपूर्ण हो जाता है तब कोई आश्चर्य नहीं कि वे उसमें परिवर्तन कर देते हैं। इसी के लिये तुलसीदास ने राम के व्यक्तित्व को समग्रतः मानवीय से अलौकिक बनाया, उनमें महत्ता की प्रतिष्ठा की और सुजनता का उत्कर्ष दिखाया, जो कार्य-व्यापार उनके आराध्य के लिये अशोभन थे उन्हें अपनी काव्यकृति से उपेक्षित किया अन्यथा औचित्यपूर्ण बताया, अपने चतुर्दिक्-रहने वाले अथवा सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों की पूजाभावना को अतिरंजित किया और रामायण के उन पात्रों को राम के सच्चे भक्तों की कोटि में प्रतिष्ठित किया जिन्होंने या तो राम की बहुत बड़ी सेवा की थी (हनुमान, सुग्रीव आदि) अथवा शत्रु होकर भी साधुता (विभीषण) या भय के कारण (मारीच, कालनेमि) राम से युद्ध करने से अपने को बचा लिया था।

राम की अलौकिकता के सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ने वाले वर्णनों को छोड़कर तुलसीदास चुपचाप आगे नहीं बढ़ते वरन् अधिकांश स्थितियों में उनका निर्वाह करते हैं, किन्तु ऐसे वर्णनों को या तो उन्होंने मृदुल बना दिया है अथवा ब्रह्म की माया के द्वारा उत्पन्न भ्रम के रूप में व्याख्यापित किया है। यह तथ्य हमारी इस दृढ़ोक्ति के पक्ष में एक प्रमाण और है कि तुलसीदास

यथासंभव अपने मूल सूत्र में परिवर्तन करने से अपने को बचाते हैं।[९] कुछ प्रसंगों में, जहाँ राम और लक्ष्मण दोनों एक साथ सम्बद्ध हैं, अशोभन विवरण केवल लक्ष्मण के साथ जोड़ दिये गये हैं। ठीक यही बात सीता के लिये भी है। जिस प्रकार स्टीकोरस के 'पालीनोड' (प्रत्याख्यान युक्त कविता) की हेलेन* ट्रॉय कभी नहीं गई उसी प्रकार सीता ने भी कभी लंका में प्रवेश नहीं किया। वे धरती पर अपना प्रतिरूप छोड़कर अग्नि में समा गईं और पुनः राम के द्वारा राक्षसों पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद अग्नि ने उन्हें पवित्र और अस्पृष्ट रूप में राम को वापस कर दिया। सीता का परित्याग और उनका अपनी माता धरती के द्वारा आत्मसात् किया जाना स्वाभाविक रूप से रामचरितमानस में स्थान नहीं प्राप्त कर सका है।

मानस में कतिपय अन्य परिवर्तन भी हैं जो दूसरे प्रकार के हैं और उनकी व्याख्या करना इतना आसान नहीं है। अनेक अवसरों पर यह बताना कठिन है कि तुलसीदास ने वाल्मीकि के वर्णन में किसलिये परिवर्तन किया जबकि प्रकट रूप से ऐसा करने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। हम यह नहीं मान सकते कि मात्र नवीनता के मोह में उन्होंने ऐसा कर दिया क्योंकि जिन तथ्यों का इससे पूर्व परीक्षण हो चुका है वे वाल्मीकि की परम्पराओं के प्रति उनकी निष्ठा के अकाट्य प्रमाण हैं। मेरे

---

९. अपने को इस प्रकार मात्र एक उदाहरण तक सीमित कर मैं किष्किंधा काण्ड के १०, ४ और अनुवर्ती छंदों को उद्धृत करना चाहूँगा जहाँ तुलसीदास ने विश्वासघातपूर्वक बध करने के आरोप में, बालि द्वारा राम की भर्त्सना के प्रसङ्ग को तद्वत बनाये रखा है। किन्तु यहाँ भी उन्होंने उसे औचित्यपूर्ण बताते हुये यह टिप्पणी की है कि "बालि के हृदय में अनुराग भरा हुआ था किन्तु मुख से उसने इस प्रकार के कटु शब्द कहे.... ।"

* ग्रीस के पुराणशास्त्र में हेलन का आख्यान अनेक रूपों में चर्चित है। उसे सौन्दर्य की देवी माना गया है। स्टीकोरस के अनुसार हेलेन का वास्तविक पति मेनीलॉस था। पेरिस नामक एक दूसरा व्यक्ति उसे भगाकर ट्रॉय नामक स्थान पर ले जाना चाहता था किन्तु वह मिश्र के तट पर पहुँच गया। जहाँ मिश्र के राजा प्रोटियस ने वास्तविक हेलेन को अपने पास रोक लिया। पेरिस नकली हेलेन को लेकर ट्रॉय पहुँचा। कालान्तर में युद्ध के बाद वास्तविक हेलेन मेनीलॉस को प्राप्त हुई। ट्राय का युद्ध ग्रीक और अँग्रेजी साहित्य का अत्यंत लोक प्रिय विषय रहा है।

—अनुवादक

विचार से इन दोनों काव्यकृतियों की विभिन्नताएँ नये काव्य (रामचरित-मानस) की नैतिक और धार्मिक भावना की तुलना में प्राचीन काव्य (रामायण) से कुछ प्रकरणों को अपसारित करने की आवश्यकता से उत्पन्न नहीं हैं बल्कि रामचरितमानस में इनका समावेश धीरे-धीरे अन्य प्रकार से हो गया है। ये अंतर अंशतः स्वैच्छिक और अंशतः अनैच्छिक है। अतः मैं इनके वैशिष्ट्य को रेखांकित करना चाहूँगा।

(क) मानस में जिन नूतन विषयों का परिवर्तन तुलसीदास ने किया है वे रामायण से अनुमोदित न होकर इतर सूत्रों से परिपुष्ट हैं। कवि ने स्वयं ही, प्रस्तुत निबन्ध के प्रारम्भ में इससे पूर्व उद्धृत श्लोक के 'क्वचिदन्य-तोऽपि' पद के माध्यम से उन सूत्रों की ओर स्पष्ट संकेत किया है।[१०]

---

१०. इन सूत्रों की खोज करना प्रस्तुत निबन्ध की सीमा-रेखा के बाहर है। सम्प्रति मैं इतना ही संकेत करना चाहूँगा कि इन सूत्रों को मुख्य रूप से पुराणों में ढूँढना चाहिये और सम्भव है उनमें 'अध्यात्मरामायण' और 'वशिष्ठ सहिता' का नाम भी हो। सर जार्ज ग्रियर्सन ने मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि अनेक समालोचकों के अनुसार तुलसीदास ने अपनी रचना में 'भुसुण्डिरामायण'* का व्यापक रूप से उपयोग किया है। सम्भव है इस सन्दर्भ का तात्पर्य केवल उत्तरकाण्ड के काकभुसुण्डि' के प्रकरण से हो जिसको मानने के लिये स्वयं सर जार्ज ग्रियर्सन भी उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। यह प्रसंग राम के जीवन से जुड़ा न होने के कारण मेरे विषय के बाहर है। इन समस्त वाह्य सूत्रों के सम्बन्ध में समग्र रूप से मेरा अभिमत यह है कि तुलसीदास ने अधिकतर इन सूत्रों की विषयवस्तु की अपेक्षा इनके सारतत्त्व का उपयोग किया है और यत्र-तत्र उनके कलात्मक रूप का भी। कला के सन्दर्भ में उन्होंने कुछ अंशों में कालिदास के 'रघुवंश' का उपयोग किया है। निम्नांकित तीन उद्धरणों से यह बात प्रमाणित हो जाती है—(रघुवंश, १२, २ = रामचरितमानस, २, २, ७; रघुवंश १२, ५ = रामचरितमानस, २, २५, १०-११; रघुवंश, १२, ८० = रामचरितमानस, ६, ६९,७)।

* रामभक्ति साहित्य के अध्येताओं के लिये भुसुण्डिरामायण बहुत समय से उत्कट जिज्ञासा का विषय बनी हुई है। अनेक पंडितों की तो धारणा रही है कि यह ग्रंथ एक रहस्य-कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि इस बीच गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य एव अध्यक्ष माननीय डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने अत्यंत परिश्रमपूर्वक देश के विभिन्न भागों से इस दुर्लभ ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ ढूँढ़ निकाली हैं। उक्त ग्रन्थ का एक प्रामाणिक

यथासंभव अपने मूल सूत्र में परिवर्तन करने से अपने को बचाते हैं।[१] कुछ प्रसंगों में, जहाँ राम और लक्ष्मण दोनों एक साथ सम्बद्ध हैं, अशोभन विवरण केवल लक्ष्मण के साथ जोड़ दिये गये हैं। ठीक यही बात सीता के लिये भी है। जिस प्रकार स्टीकोरस के 'पालीनोड' (प्रत्याख्यान युक्त कविता) की हेलेन* ट्रॉय कभी नहीं गई उसी प्रकार सीता ने भी कभी लंका में प्रवेश नहीं किया। वे धरती पर अपना प्रतिरूप छोड़कर अग्नि में समा गईं और पुनः राम के द्वारा राक्षसों पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद अग्नि ने उन्हें पवित्र और अस्पृष्ट रूप में राम को वापस कर दिया। सीता का परित्याग और उनका अपनी माता धरती के द्वारा आत्मसात् किया जाना स्वाभाविक रूप से रामचरितमानस में स्थान नहीं प्राप्त कर सका है।

मानस में कतिपय अन्य परिवर्तन भी हैं जो दूसरे प्रकार के हैं और उनकी व्याख्या करना इतना आसान नहीं है। अनेक अवसरों पर यह बताना कठिन है कि तुलसीदास ने वाल्मीकि के वर्णन में किसलिये परिवर्तन किया जबकि प्रकट रूप से ऐसा करने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। हम यह नहीं मान सकते कि मात्र नवीनता के मोह में उन्होंने ऐसा कर दिया क्योंकि जिन तथ्यों का इससे पूर्व परीक्षण हो चुका है वे वाल्मीकि की परम्पराओं के प्रति उनकी निष्ठा के अकाट्य प्रमाण हैं। मेरे

---

६. अपने को इस प्रकार मात्र एक उदाहरण तक सीमित कर मैं किष्किंधा काण्ड के १०, ४ और अनुवर्ती छंदों को उद्धृत करना चाहूँगा जहाँ तुलसीदास ने विश्वासघातपूर्वक बध करने के आरोप में, बालि द्वारा राम की भर्त्सना के प्रसङ्ग को तद्वत बनाये रखा है। किन्तु यहाँ भी उन्होंने उसे औचित्यपूर्ण बताते हुये यह टिप्पणी की है कि "बालि के हृदय में अनुराग भरा हुआ था किन्तु मुख से उसने इस प्रकार के कटु शब्द कहे.... ।"

* ग्रीस के पुराणशास्त्र में हेलन का आख्यान अनेक रूपों में चर्चित है। उसे सौन्दर्य की देवी माना गया है। स्टीकोरस के अनुसार हेलेन का वास्तविक पति मेनीलॉस था। पेरिस नामक एक दूसरा व्यक्ति उसे भगाकर ट्रॉय नामक स्थान पर ले जाना चाहता था किन्तु वह मिश्र के तट पर पहुँच गया। जहाँ मिश्र के राजा प्रोटियस ने वास्तविक हेलेन को अपने पास रोक लिया। पेरिस नकली हेलेन को लेकर ट्रॉय पहुँचा। कालान्तर में युद्ध के बाद वास्तविक हेलेन मेनीलॉस को प्राप्त हुई। ट्रॉय का युद्ध ग्रीक और अंग्रेजी साहित्य का अत्यंत लोक प्रिय विषय रहा है।

—अनुवादक

विचार से इन दोनों काव्यकृतियों की विभिन्नताएँ नये काव्य (रामचरितमानस) की नैतिक और धार्मिक भावना की तुलना में प्राचीन काव्य (रामायण) से कुछ प्रकरणों को अपसारित करने की आवश्यकता से उत्पन्न नहीं हैं बल्कि रामचरितमानस में इनका समावेश धीरे-धीरे अन्य प्रकार से हो गया है। ये अंतर अंशतः स्वैच्छिक और अंशतः अनैच्छिक है। अतः मैं इनके वैशिष्ट्य को रेखांकित करना चाहूंगा।

(क) मानस में जिन नूतन विषयों का परिवर्तन तुलसीदास ने किया है वे रामायण से अनुमोदित न होकर इतर सूत्रों से परिपुष्ट हैं। कवि ने स्वयं ही, प्रस्तुत निबन्ध के प्रारम्भ में इससे पूर्व उद्धृत श्लोक के 'क्वचिदन्यतोऽपि' पद के माध्यम से उन सूत्रों की ओर स्पष्ट संकेत किया है।[१०]

---

१०. इन सूत्रों की खोज करना प्रस्तुत निबन्ध की सीमा-रेखा के बाहर है। सम्प्रति मैं इतना ही संकेत करना चाहूँगा कि इन सूत्रों को मुख्य रूप से पुराणों में ढूँढना चाहिये और सम्भव है उनमें 'अध्यात्मरामायण' और 'वशिष्ठ संहिता' का नाम भी हो। सर जार्ज ग्रियर्सन ने मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि अनेक समालोचकों के अनुसार तुलसीदास ने अपनी रचना में 'भुसुण्डिरामायण'❀ का व्यापक रूप से उपयोग किया है। सम्भव है इस सन्दर्भ का तात्पर्य केवल उत्तरकाण्ड के काकभुसुण्डि' के प्रकरण से हो जिसको मानने के लिये स्वयं सर जार्ज ग्रियर्सन भी उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। यह प्रसंग राम के जीवन से जुड़ा न होने के कारण मेरे विषय के बाहर है। इन समस्त बाह्य सूत्रों के सम्बन्ध में समग्र रूप से मेरा अभिमत यह है कि तुलसीदास ने अधिकतर इन सूत्रों की विषयवस्तु की अपेक्षा इनके सारतत्त्व का उपयोग किया है और यत्र-तत्र उनके कलात्मक रूप का भी। कला के सन्दर्भ में उन्होंने कुछ अंशों में कालिदास के 'रघुवंश' का उपयोग किया है। निम्नांकित तीन उद्धरणों से यह बात प्रमाणित हो जाती है—(रघुवंश, १२, २ = रामचरितमानस, २, २, ७; रघुवंश १२. ५ = रामचरितमानस, २, २५, १०-११; रघुवंश, १२, ८० = रामचरितमानस, ६, ६९,७)।

❀ रामभक्ति साहित्य के अध्येताओं के लिये भुसुण्डिरामायण बहुत समय से उत्कट जिज्ञासा का विषय बनी हुई है। अनेक पंडितों की तो धारणा रही है कि यह ग्रंथ एक रहस्य-कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि इस बीच गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष माननीय डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने अत्यंत परिश्रमपूर्वक देश के विभिन्न भागों से इस दुर्लभ ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ ढूँढ़ निकाली हैं। उक्त ग्रन्थ का एक प्रामाणिक

(ख) तुलसीदास ने अनजाने ही कतिपय नये विषयों का प्रवर्तन भी कर दिया है। ऐसा करते समय उनके मन में वाल्मीकि के पथ से कतराने का कोई इरादा नहीं था। वैसे तो इन नये विषयों के मूल रूप को देखते हुये हम इन्हें चूक अथवा प्रमाद की संज्ञा देकर अपेक्षाकृत उचित ही करेंगे परन्तु तो भी हम इनकी व्याख्या निम्नांकित ढंग से कर सकते हैं: [क] अंशतः यह मानकर कि इन उद्दिष्ट काव्यांशों की रचना करते समय कवि के मन में संस्कृत पाठ की ठीक-ठीक दृष्टि नहीं थी और उसने यह जाने विना ही कि यह गलत है, स्मृति के सहारे उसे लिख डाला और [ख] अंशतः यह सोचकर कि वर्णनों को घटाने और संक्षिप्त करने के अपने सतत प्रयास के फलस्वरूप वाल्मीकि के कई सर्गों की कथावस्तु को थोड़े से छंदों में समेटने का प्रयत्न करते हुये कवि ने अनैच्छिक रूप से तथ्यों को अत्यंत संक्षिप्तता के साथ त्रुटिपूर्ण ढंग से वर्णित कर उसके रूप को परिवर्तित कर दिया है। इस दूसरे वर्ग के परिवर्तनों को उदाहृत करने की दृष्टि से एक दृष्टांत प्रस्तुत करना चाहूँगा। 'अयोध्याकांड', १५६ में तुलसीदास दशरथ के अंतिम क्षणों का वर्णन करने के तुरन्त बाद रानियों के विलाप का वर्णन करना प्रारम्भ कर देते हैं। उन्हें इस बात का ध्यान नहीं रहता कि रानियों का विलाप दूसरे दिन घटित हुआ था। इसके अनन्तर वे परिजन और पुरजन के शोक का वर्णन करने लगते हैं मानों यह सब कुछ दशरथ की मृत्यु वाली रात में ही घटित हुआ हो। आगे वे कहते हैं—"इस प्रकार विलाप करने में रात व्यतीत हो गयी और प्रातःकाल सभी महामुनि ज्ञानियों का पदार्पण हुआ (१५६, ८)। इस वर्णन के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषियों का पदार्पण दशरथ की मृत्यु वाली रात के उत्तरवर्ती भोर में हुआ जबकि वाल्मीकि के अनुसार उनका आगमन या उनका एकत्रीकरण दूसरे दिन भोर में हुआ था। काव्य के इस अंश की रचना करते समय तुलसी के मस्तिष्क में ये सब बातें थीं और इसमें संदेह नहीं कि वे रामायण के संवादी स्थलों का ठीक-ठीक अनुसरण कर रहे थे। यह बात आगामी पृष्ठों में उद्धृत समानांतर काव्यांश संख्या ३१ से भली प्रकार प्रमाणित होती है। अतः यह स्पष्ट है कि तुलसीदास सहज ढंग से पहले दिन के अंतराल का उल्लेख करना भूल गये हैं।

संस्करण विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी से शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये हिन्दी-जगत् डॉ सिंह का चिरकाल तक ऋणी रहेगा।

—अनुवादक

परिवर्तनों के इसी वर्ग में उसकी भी गणना की जा सकती है जिसे हम समयान्तराल (interval) के प्रमाद की संज्ञा देना चाहेंगे। इस प्रकार का प्रमाद रामचरितमानस में एक सामान्य नियम सा बन गया है। जब कभी वाल्मीकि के वर्णन में दो समतुल्य घटनाओं का थोड़े समयान्तराल के द्वारा, भले ही वह अधिक महत्त्वपूर्ण न हो, पृथक्करण हो जाता है और उसके कारण कथावस्तु के विकास में व्यवधान उपस्थित होता है तब तुलसी-दास ऐसे अन्तराल को मिटाकर दोनों घटनाओं का परस्पर विलयन कर देते है। कतिपय उदाहरणों से इस बात को और भी स्पष्ट किया जा सकता है।

[क] अयोध्याकांड (ग, ४ = ख, ३) में वाल्मीकि के अनुसार दशरथ राम को अपनी उपस्थिति में बुलवाते हैं और उन्हें युवराज पद पर अभिसिक्त करने से सम्बन्धित अपने निश्चय से अवगत कराकर सीता के साथ राज्या-भिषेक के निमित्त व्रतपालन करने का आदेश देते हैं। (पहली घटना) राम अवकाश लेकर सीता और कौशल्या को खोजने जाते हैं और उन दोनों को देवतागार में अपने (राम के) लिये प्रार्थना करते पाते हैं। उन्हें एतद्विषयक सूचना देने के बाद राम अपने महल को लौट जाते हैं। (समयान्तराल) इसके पश्चात् व्रतपालन के विषय में पुनः बताने के लिये दशरथ वशिष्ठ को राम के पास भेजते हैं। (दूसरी घटना) तुलसी के काव्य में उक्त दोनों घटनाओं के बीच का अन्तराल समाप्त हो गया है और दोनों इस हद तक एक दूसरे में मिल गई हैं कि स्वयं दशरथ ने राम को राज्यारोहण की सूचना न देकर प्रारम्भ में ही वशिष्ठ को सूचना देने के साथ व्रतपालन की रीति बताने के लिये राम के पास भेजा (रामचरितमानस, २, ९-१०)।

[ख] वाल्मीकि के अरण्यकांड में (ग, १९–२० = ख, २५–२६) शूर्प-णखा लक्ष्मण के द्वारा विकलांग होकर अश्रुपात करती हुई अपने भाई खर के पास जाती है और उसके द्वारा दुख का कारण पूछे जाने पर उसे दो राघवों के हाथों अपने अपमानित होने की बात बताती है। खर उसका बदला लेने का दायित्व १४ राक्षसों को सौंपता है। शूर्पणखा राघवों के विरुद्ध इन योद्धाओं का नेतृत्व करती है किन्तु राम उन्हें विनष्ट कर देते हैं। (पहली घटना) इसके पश्चात् शूर्पणखा खर के पास लौट आती है और तब तक रोती रहती है जब तक कि खर उसके रोने का कारण पुनः नहीं पूछता। वह उनसे १४ राक्षसों की पराजय के विषय में बताती है और बदला लेने के लिये पुनः निवेदन करती है (ग, २१ = ख, २७)। (समयांतराल)

तब खर-दूषण के नियंत्रण में, १४ हजार राक्षसों ने राम के विरुद्ध पुनः प्रस्थान किया (ग, २२=ख, २८)। (दूसरी घटना) तुलसी ने उक्त दोनों घटनाओं के बीच के अन्तराल को मिटाकर उन्हें एक कर दिया है। उन्होंने दो आक्रमणों से घटाकर केवल एक का वर्णन किया है किन्तु वह भी उक्त दोनों आक्रमणों में से किसी एक का संवादी नहीं वरन् दोनों का मिश्रित रूप है। इस प्रकार तुलसीदास ने अपने अनुपम आक्रमण का नेतृत्व शूर्पणखा के द्वारा वर्णित दिखाया है (रामायण के प्रधान आक्रमण की भाँति) और उसमें १४ हजार राक्षसों के होने की बात कही है (रामायण के द्वितीय आक्रमण की भाँति)। (रामचरितमानस, ३, २०)

[ग] वाल्मीकि के युद्धकांड में (ग, ६८=ख, ४७) रावण, कुंभकर्ण की मृत्यु पर, विलाप करता है (पहली घटना)। इसके बाद दूसरा भयंकर युद्ध होता है जिसमें नरांतक, देवांतक, महोदर, त्रिशरा, महापार्श्व और अतिकाय को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है (ग, ६९-७१=ख, ४८-५१)। (समयांतराल) जब तक इन्द्रजीत अपनी दर्पपूर्ण प्रतिज्ञाओं से रावण को सांत्वना नहीं प्रदान करता तब तक वह उपर्युक्त कारणों से विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करता है। (दूसरी घटना) तुलसीदास ने सम्पूर्ण समयांतराल को समाप्त कर रावण के मात्र एक विलाप का वर्णन किया है और वह भी कुंभकर्ण की मृत्यु के बाद। इस विशेष अवसर पर मेघनाद ने उसे सांत्वना प्रदान की (रामचरितमानस, ६, ७२)।

परिवर्तनों के इसी क्रम में हम रामचरितमानस में आये हुये उन सभी कालदोषों को भी सम्मिलित कर सकते हैं जिनमें तुलसीदास ने सर्वप्रथम वाल्मीकि से विशिष्ट घटना-परिणामों की जानकारी प्राप्त की और बाद में उन्हें अपने अनुभव में उतार कर अपने पात्रों पर उनकी प्रवृत्ति के अनुसार आरोपित कर दिया। इस प्रकार की घटनायें रामायण में या तो प्रसंगवशात्, अथवा पूर्व घटना के स्वाभाविक परिणाम के रूप में बाद में घटित होती हैं। तुलसी ने स्वयं दशरथ को अग्नि के द्वारा गर्भधारण करने वाली बूटी प्रदान करने और उसे दो समभागों में विभक्त करने का निर्देश देने की उद्भावना की (रामचरितमानस, १, १८९, ८); विश्वामित्र ने दशरथ से केवल राम की ही नहीं बल्कि लक्ष्मण की भी याचना की (रामचरितमानस, १, २०७, १०), राम ने सुग्रीव से, एक ही बाण में, बालि का बध करने की प्रतिज्ञा की (रामचरितमानस, ४, ७, १५) आदि।

रामचरितमानस की आलंकारिकता एवं उसके कलापक्ष पर विचार करने से हमें उसकी कथावस्तु की तुलना में सर्वथा भिन्न प्रकार की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। तथ्य यह है कि तुलसीदास एक ओर, जहाँ तक राम के जीवन का सम्बन्ध है, अपने को वाल्मीकि से संपुष्ट करते हैं और दूसरी ओर वे वाल्मीकि की शैली और अभिव्यक्ति से अपने को सर्वथा स्वतन्त्र रखने का भरपूर प्रयत्न करते हैं। वे वाल्मीकि के कलात्मक सूत्र का उपयोग करने में तीव्र उदासीनता प्रदर्शित करते हैं और अनजाने भी अपने अग्रज कवि द्वारा प्रयुक्त किसी बिंब, उपमान अथवा काव्यांश से प्रभावित नहीं होते। चाहे यह कवि के द्वारा अपने महत्त्व को भलीभांति जानने के कारण उत्पन्न सहज स्वाभिमान हो जिसे वह, अपने को गतानुगतिक बनाकर, नीचे नहीं गिराना चाहता था अथवा उसे अपनी काव्यगत प्रतिभा और समृद्ध कल्पना को स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त करने की आवश्यकता थी। सम्भव है उनकी यह भी इच्छा रही हो कि उनकी कविता नए युग की रुचि के अनुरूप स्वरूप ग्रहण करे और जनता के द्वारा सुविधापूर्वक समझी तथा पसन्द की जाए। तथ्य यह है कि तुलसीदास ने इस बात के लिए सतत प्रयत्न किया कि वे गतानुगतिकता से मुक्त रह कर अपनी स्वायत्तता और मौलिकता को प्रतिष्ठित करें और उन्होंने अपने इस प्रयत्न में सफलता भी पायी है। इसीलिए इस दृष्टि से वे मात्र पुनर्कथन करने वाले कवि न होकर नयी और मौलिक रचना के कर्ता माने जाते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना पड़ता है कि उन्होंने वाल्मीकि को चाहे जिस हद तक आधार बनाया हो किन्तु वाल्मीकि उनके आदर्श कथमपि नहीं बन सके हैं।

निःसन्देह रामचरितमानस की मौलिकता का बहुलांश, जिसके कारण रामायण से उसका पार्थक्य प्रमाणित होता है, उसमें निहित धार्मिक सिद्धान्तों और उन्हें शब्दबद्ध करने वाली भाषा की अपनी सामर्थ्य के कारण है। यहाँ कविता के वाचन द्वारा प्राप्त किसी पाठक के सामान्य प्रभावों से मेरा कोई तात्पर्य नहीं है। मैंने, किसी रचना पर दूसरी रचना की निर्भरता के प्रश्न को हल करने के लिए, विधेयात्मक मानदण्डों के पक्ष में अपनी संमति पहले ही दे दी है और तदनुसार मैंने यहाँ भी सामान्य प्रभावों से बचते हुए दोनों काव्यों के समानांतर अंशों की तुलना पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। राम के सम्पूर्ण जीवनवृत्त की धैर्यपूर्वक तुलना करने के पश्चात् ही मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि तुलसीदास ने जानबूझ कर अपने को वाल्मीकि की अभिव्यक्तियों से मुक्त रखा है और तथ्यों को नए सन्दर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है कि जिससे उनके श्रोताओं और पाठकों के

मस्तिष्क पर नये प्रभाव अंकित हो सकें। यह निष्कर्ष मुख्य रूप से निम्नांकित पर्यवेक्षणों से प्राप्त होता है।

१. यद्यपि तुलसीदास की रुचि सामान्य रूप से प्रसंगों के संक्षिप्तीकरण और संयोजन में है तो भी उनका ध्यान वाल्मीकि द्वारा शीघ्रता में वर्णित प्रसंगों पर विशेष रूप से रहता है और जिन प्रसंगों का वाल्मीकि ने किंचिद्विस्तार के साथ वर्णन किया है उन्हें तुलसीदास या तो छोड़ देते हैं अथवा साधारण संकेत के साथ संदर्भित कर देते हैं।[११] घटनाओं की पहली शृंखला को व्याख्यापित करने वाले उदाहरण के रूप में मैं अंगद के दौत्य प्रसंग को उद्धृत करना चाहूँगा जिसको वाल्मीकि ने बहुत थोड़े से श्लोकों में अभिव्यक्त किया है (ग, ६, ४१, ५९ और अनु० = ख, ६, १६, ६० और अनु०) जबकि तुलसीदास ने उसे अतिशय विस्तार दे दिया है (रामचरितमानस, ६, १७,३५)। घटनाओं की दूसरी शृंखला का यथोचित निदर्शन वाल्मीकि के उन प्रसंगों से होता है जिन्हें तुलसीदास ने छोड़ दिया है अथवा बहुत ही त्वरित और अस्पष्ट संकेत के साथ निर्दिष्ट किया है जिनका विश्लेषण हम विगत पृष्ठों में कर आये हैं।

२. तुलसीदास ने इस बात का निरन्तर प्रयास किया है कि वाल्मीकि की उपमाओं का पुनर्कथन न होने पाये। इसलिए समानांतर पंक्तियों में वे सदैव

---

११. जो प्रसंग पूर्ण रूप से प्रसिद्ध हैं उनके प्रति तुलसी में विरक्ति दिखाई पड़ती है और दूसरों के द्वारा विशद तथा आधिकारिक रूप से वर्णित प्रसंगों को उन्होंने खुलेआम एकाधिक छन्दों में ही ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ सती के आत्मदाह का क्षिप्र गति से वर्णन करने के बाद वे कहते हैं—

यह इतिहास सकल जग जाना।
तातें मैं संक्षेप बखाना ॥
(रामचरितमानस, १, ६ = ५, ४)

इसी प्रकार की उक्ति कार्तिकेय के जन्म और उनके शौर्य विषयक संकेतों में भी देखी जा सकती है (रामचरितमानस १, १०३, ६–१०)। वाल्मीकि के वर्णनों की तुलना में भिन्न आकार का वर्णन प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का इससे पूर्व ग्राउज ने भी उल्लेख किया है "अन्य प्रसंगों में जहाँ कथा वाल्मीकि द्वारा संयोजित ढर्रे पर चलती है–जैसे विवाहोत्सव का वर्णन-तुलसीदास ने उसे विस्तार दे दिया है और जहाँ अग्रज कवि (वाल्मीकि) विलंब तक ठहरा है, वहाँ उसके उत्तराधिकारी (तुलसीदास) ने बड़ी शीघ्रता दिखायी है। (निज कृत रामचरितमानस के अनुवाद की भूमिका पृष्ठ ४)

वाल्मीकि की उपमाओं को प्रायः अपने द्वारा निर्मित दूसरी उपमाओं से स्थानांतरित करते रहते हैं।

३. समानांतर पंक्तियों में तुलसीदास ने सामान्य रूप से वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त शब्दों, संज्ञाओं अथवा अभिधानों की अवहेलना की है और उनके स्थान पर उनके पर्यायों के प्रयोग किये हैं।[१२]

वाल्मीकि की कला के अनुकरण से अपने को मुक्त रखने के सतत् प्रयत्न के बावजूद तुलसीदास कभी-कभी अनजाने ही उन फंदों में पड़ गये हैं जिनसे वे बचना चाहते थे उन्होंने रामायण की कतिपय अभिव्यक्ति-भंगिमाओं को वाल्मीकि की ही शब्दावली में पुनरुत्पादित किया है अथवा अपने अग्रज कवि की कुछ उपमाओं को स्वयं ही प्रयुक्त किया है। रामचरितमानस में इन वाल्मीकीय संस्मृतियों की संख्या चाहे जितनी कम हो और संस्कृत जैसी भाषा से एक भिन्न प्रकार की भाषा में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में उनमें अत्यधिक परिवर्तन हो जाने तथा महाकाव्य की समृद्ध शैली से बहुत भिन्न प्रकार की शैली में आ जाने के कारण उन्हें पहचानने का कार्य चाहे जितना कठिन हो किन्तु परिश्रमपूर्ण अन्वेषण के द्वारा उन्हें अब भी प्रकाश में लाया जा सकता है। जहाँ तक इनसे इस बात का सुनिश्चित प्रमाण मिलता है कि तुलसीदास ने वास्तव में संस्कृत रामायण से सीधे प्रभाव ग्रहण किया है ये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

वाल्मीकि की ध्यानाकर्षक संस्मृतियों के उन उदाहरणों और निरूपणों के आधार पर, जिन्हें रामचरितमानस में अभी ढूंढना शेष है, विषय में प्रवेश करने और उसके द्वारा अब तक दृढ़तापूर्वक कही हुई अपनी बातों को प्रमाणित करने से पहले मैं इस प्रश्न को हल करना आवश्यक समझता हूँ कि तुलसी ने रामायण के किस संस्करण का प्रयोग किया था।

---

१२. यद्यपि पर्यायों के द्वारा इस प्रकार की प्रतिस्थापना को छंदःशास्त्रीय आवश्यकता के रूप में व्याख्यापित किया जा सकता है किन्तु सभी सन्दर्भों में ऐसा नहीं हो सकता। विभिन्न स्थितियों को स्पष्ट करने वाले कतिपय उदाहरण ये हैं — 'स्वयंभुदत्त' के लिये ब्रह्मदत्त' (द्रष्टव्य समानांतर काव्यांश संख्या ७६) 'सौन्दर्य' के लिये सहोदर' (द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश सं० ७३), 'अस्त्रमाग्नेयं' के लिये 'पावकसर' (द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश सं० ७), निशाकर' के लिये 'चन्द्रमा' (रामचरितमानस, ५ २६), 'इन्द्रजीत' के लिये 'मेघनाद' आदि।

मस्तिष्क पर नये प्रभाव अंकित हो सकें। यह निष्कर्ष मुख्य रूप से निम्नांकित पर्यवेक्षणों से प्राप्त होता है।

१. यद्यपि तुलसीदास की रुचि सामान्य रूप से प्रसंगों के संक्षिप्तीकरण और संयोजन में है तो भी उनका ध्यान वाल्मीकि द्वारा शीघ्रता में वर्णित प्रसंगों पर विशेष रूप से रहता है और जिन प्रसंगों का वाल्मीकि ने किंचिद्विस्तार के साथ वर्णन किया है उन्हें तुलसीदास या तो छोड़ देते हैं अथवा साधारण संकेत के साथ संदर्भित कर देते हैं।[११] घटनाओं की पहली श्रृंखला को व्याख्यापित करने वाले उदाहरण के रूप में मैं अंगद के दौत्य प्रसंग को उद्धृत करना चाहूँगा जिसको वाल्मीकि ने बहुत थोड़े से श्लोकों में अभिव्यक्त किया है (ग, ६, ४१, ५६ और अनु० = ख, ६, १६, ६० और अनु०) जबकि तुलसीदास ने उसे अतिशय विस्तार दे दिया है (रामचरितमानस, ६, १७,३५)। घटनाओं की दूसरी श्रृंखला का यथोचित निदर्शन वाल्मीकि के उन प्रसंगों से होता है जिन्हें तुलसीदास ने छोड़ दिया है अथवा बहुत ही त्वरित और अस्पष्ट संकेत के साथ निर्दिष्ट किया है जिनका विश्लेषण हम विगत पृष्ठों में कर आये हैं।

२. तुलसीदास ने इस बात का निरन्तर प्रयास किया है कि वाल्मीकि की उपमाओं का पुनर्कथन न होने पाये। इसलिए समानांतर पंक्तियों में वे सदैव

---

११. जो प्रसंग पूर्ण रूप से प्रसिद्ध हैं उनके प्रति तुलसी में विरक्ति दिखाई पड़ती है और दूसरों के द्वारा विशद तथा आधिकारिक रूप से वर्णित प्रसंगों को उन्होंने खुलेआम एकाधिक छन्दों में ही ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ सती के आत्मदाह का क्षिप्र गति से वर्णन करने के बाद वे कहते हैं—

यह इतिहास सकल जग जाना।
तांते मैं संक्षेप बखाना ॥
(रामचरितमानस, १, ६ = ५, ४)

इसी प्रकार की उक्ति कार्तिकेय के जन्म और उनके शौर्य विषयक संकेतों में भी देखी जा सकती है (रामचरितमानस १, १०३, ६-१०)। वाल्मीकि के वर्णनों की तुलना में भिन्न आकार का वर्णन प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का इससे पूर्व ग्राउज़ ने भी उल्लेख किया है "अन्य प्रसंगों में जहाँ कथा वाल्मीकि द्वारा संयोजित ढर्रे पर चलती है—जैसे विवाहोत्सव का वर्णन-तुलसीदास ने उसे विस्तार दे दिया है और जहाँ अग्रज कवि (वाल्मीकि) विलंब तक ठहरा है, वहाँ उसके उत्तराधिकारी (तुलसीदास) ने बड़ी शीघ्रता दिखायी है। (निज कृत रामचरितमानस के अनुवाद की भूमिका पृष्ठ ४)

वाल्मीकि की उपमाओं को प्रायः अपने द्वारा निर्मित दूसरी उपमाओं से स्थानांतरित करते रहते हैं।

३. समानांतर पंक्तियों में तुलसीदास ने सामान्य रूप से वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त शब्दों, संज्ञाओं अथवा अभिधानों की अवहेलना की है और उनके स्थान पर उनके पर्यायों के प्रयोग किये हैं।[१२]

वाल्मीकि की कला के अनुकरण से अपने को मुक्त रखने के सतत् प्रयत्न के बावजूद तुलसीदास कभी-कभी अनजाने ही उन फंदों में पड़ गये हैं जिनसे वे बचना चाहते थे उन्होंने रामायण की कतिपय अभिव्यक्ति-भंगिमाओं को वाल्मीकि की ही शब्दावली में पुनरुत्पादित किया है अथवा अपने अग्रज कवि की कुछ उपमाओं को स्वयं ही प्रयुक्त किया है। रामचरितमानस में इन वाल्मीकीय संस्मृतियों की संख्या चाहे जितनी कम हो और संस्कृत जैसी भाषा से एक भिन्न प्रकार की भाषा में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में उनमें अत्यधिक परिवर्तन हो जाने तथा महाकाव्य की समृद्ध शैली से बहुत भिन्न प्रकार की शैली में आ जाने के कारण उन्हें पहचानने का कार्य चाहे जितना कठिन हो किन्तु परिश्रमपूर्ण अन्वेषण के द्वारा उन्हें अब भी प्रकाश में लाया जा सकता है। जहाँ तक इनसे इस बात का सुनिश्चित प्रमाण मिलता है कि तुलसीदास ने वास्तव में संस्कृत रामायण से सीधे प्रभाव ग्रहण किया है ये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

वाल्मीकि की ध्यानाकर्षक संस्मृतियों के उन उदाहरणों और निरूपणों के आधार पर, जिन्हें रामचरितमानस में अभी ढूंढना शेष है, विषय में प्रवेश करने और उसके द्वारा अब तक दृढ़तापूर्वक कही हुई अपनी बातों को प्रमाणित करने से पहले मैं इस प्रश्न को हल करना आवश्यक समझता हूँ कि तुलसी ने रामायण के किस संस्करण का प्रयोग किया था।

---

१२. यद्यपि पर्यायों के द्वारा इस प्रकार की प्रतिस्थापना को छंदःशास्त्रीय आवश्यकता के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है किन्तु सभी सन्दर्भों में ऐसा नहीं हो सकता। विभिन्न स्थितियों को स्पष्ट करने वाले कतिपय उदाहरण ये हैं — 'स्वयंभुदत्त' के लिये ब्रह्मदत्त' (द्रष्टव्य समानांतर काव्यांश संख्या ७९) 'सौन्दर्य' के लिये सहोदर' (द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश सं० ७१). 'अस्त्रमाग्नेयं' के लिये 'पावकसर' (द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश सं, ७), निशाकर' के लिये 'चन्द्रमा' (रामचरितमानस, ५ २९), 'इन्द्रजीत' के लिये 'मेघनाद' आदि।

मस्तिष्क पर नये प्रभाव अंकित हो सकें। यह निष्कर्ष मुख्य रूप से निम्नांकित पर्यवेक्षणों से प्राप्त होता है।

१. यद्यपि तुलसीदास की रुचि सामान्य रूप से प्रसंगों के संक्षिप्तीकरण और संयोजन में है तो भी उनका ध्यान वाल्मीकि द्वारा शीघ्रता में वर्णित प्रसंगों पर विशेष रूप से रहता है और जिन प्रसंगों का वाल्मीकि ने किंचिद्विस्तार के साथ वर्णन किया है उन्हें तुलसीदास या तो छोड़ देते हैं अथवा साधारण संकेत के साथ संदर्भित कर देते हैं।[११] घटनाओं की पहली शृंखला को व्याख्यापित करने वाले उदाहरण के रूप में मैं अंगद के दौत्य प्रसंग को उद्धृत करना चाहूँगा जिसको वाल्मीकि ने बहुत थोड़े से श्लोकों में अभिव्यक्त किया है (ग, ६, ४१, ५६ और अनु० = ख, ६, १६, ६० और अनु०) जबकि तुलसीदास ने उसे अतिशय विस्तार दे दिया है (रामचरितमानस, ६, १७,३५)। घटनाओं की दूसरी शृंखला का यथोचित निदर्शन वाल्मीकि के उन प्रसंगों से होता है जिन्हें तुलसीदास ने छोड़ दिया है अथवा बहुत ही त्वरित और अस्पष्ट संकेत के साथ निर्दिष्ट किया है जिनका विश्लेषण हम विगत पृष्ठों में कर आये हैं।

२. तुलसीदास ने इस बात का निरन्तर प्रयास किया है कि वाल्मीकि की उपमाओं का पुनर्कथन न होने पाये। इसलिए समानांतर पंक्तियों में वे सदैव

---

११. जो प्रसंग पूर्ण रूप से प्रसिद्ध हैं उनके प्रति तुलसी में विरक्ति दिखाई पड़ती है और दूसरों के द्वारा विशद तथा आधिकारिक रूप से वर्णित प्रसंगों को उन्होंने खुलेआम एकाधिक छन्दों में ही ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ सती के आत्मदाह का क्षिप्र गति से वर्णन करने के बाद वे कहते हैं—

यह इतिहास सकल जग जाना।
तांते मैं संक्षेप बखाना ॥
(रामचरितमानस, १, ६ = ५, ४)

इसी प्रकार की उक्ति कार्तिकेय के जन्म और उनके शौर्य विषयक संकेतों में भी देखी जा सकती है (रामचरितमानस १, १०३, ६–१०)। वाल्मीकि के वर्णनों की तुलना में भिन्न आकार का वर्णन प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का इससे पूर्व ग्राउज़ ने भी उल्लेख किया है "अन्य प्रसंगों में जहाँ कथा वाल्मीकि द्वारा संयोजित ढर्रे पर चलती है–जैसे विवाहोत्सव का वर्णन-तुलसीदास ने उसे विस्तार दे दिया है और जहाँ अग्रज कवि (वाल्मीकि) विलंब तक ठहरा है, वहाँ उसके उत्तराधिकारी (तुलसीदास) ने बड़ी शीघ्रता दिखायी है। (निज कृत रामचरितमानस के अनुवाद की भूमिका पृष्ठ ४)

वाल्मीकि की उपमाओं को प्रायः अपने द्वारा निर्मित दूसरी उपमाओं से स्थानांतरित करते रहते हैं।

३. समानांतर पंक्तियों में तुलसीदास ने सामान्य रूप से वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त शब्दों, संज्ञाओं अथवा अभिधानों की अवहेलना की है और उनके स्थान पर उनके पर्यायों के प्रयोग किये हैं।[१२]

वाल्मीकि की कला के अनुकरण से अपने को मुक्त रखने के सतत् प्रयत्न के बावजूद तुलसीदास कभी-कभी अनजाने ही उन फंदों में पड़ गये हैं जिनसे वे बचना चाहते थे उन्होंने रामायण की कतिपय अभिव्यक्ति-भंगिमाओं को वाल्मीकि की ही शब्दावली में पुनरुत्पादित किया है अथवा अपने अग्रज कवि की कुछ उपमाओं को स्वयं ही प्रयुक्त किया है। रामचरितमानस में इन वाल्मीकीय संस्मृतियों की संख्या चाहे जितनी कम हो और संस्कृत जैसी भाषा से एक भिन्न प्रकार की भाषा में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में उनमें अत्यधिक परिवर्तन हो जाने तथा महाकाव्य की समृद्ध शैली से बहुत भिन्न प्रकार की शैली में आ जाने के कारण उन्हें पहचानने का कार्य चाहे जितना कठिन हो किन्तु परिश्रमपूर्ण अन्वेषण के द्वारा उन्हें अब भी प्रकाश में लाया जा सकता है। जहाँ तक इनसे इस बात का सुनिश्चित प्रमाण मिलता है कि तुलसीदास ने वास्तव में संस्कृत रामायण से सीधे प्रभाव ग्रहण किया है ये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

वाल्मीकि की ध्यानाकर्षक संस्मृतियों के उन उदाहरणों और निरूपणों के आधार पर, जिन्हें रामचरितमानस में अभी ढूंढना शेष है, विषय में प्रवेश करने और उसके द्वारा अब तक दृढ़तापूर्वक कही हुई अपनी बातों को प्रमाणित करने से पहले मैं इस प्रश्न को हल करना आवश्यक समझता हूँ कि तुलसी ने रामायण के किस संस्करण का प्रयोग किया था।

---

१२. यद्यपि पर्यायों के द्वारा इस प्रकार की प्रतिस्थापना को छंदःशास्त्रीय आवश्यकता के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है किन्तु सभी सन्दर्भों में ऐसा नहीं हो सकता। विभिन्न स्थितियों को स्पष्ट करने वाले कतिपय उदाहरण ये हैं — 'स्वयंभुदत्त' के लिये ब्रह्मदत्त' (द्रष्टव्य समानांतर काव्यांश संख्या ७९) 'सौन्दर्य' के लिये सहोदर' (द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश सं० ७३), 'अस्त्रमाग्नेयं' के लिये 'पावकसर' (द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश सं० ७), निशाकर' के लिये 'चन्द्रमा' (रामचरितमानस, ५ २९), 'इन्द्रजीत' के लिये 'मेघनाद' आदि।

रामचरितमानस की सावधानीपूर्वक मीमांसा करने से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तुलसीदास ने सर्वत्र रामायण के एक ही संस्करण का प्रयोग नहीं किया था। मुख्यतः उन्होंने रामायण के 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है। उन्हें 'ग' संस्करण की भी जानकारी थी जिसका व्यापक प्रयोग उनके द्वारा हुआ। संभव है उन्होंने 'क' संस्करण का भी प्रयोग किया हो।

यदि हम केवल तुलसी द्वारा निर्धारित अलग-अलग सर्गों की सीमाओं पर विचार करें तो जहाँ तक उनके द्वारा गृहीत किसी एक आदर्श संस्करण का प्रश्न है प्रथम दृष्टि में ही उनमें असंगति दिखाई पड़ती है। रामायण की पद्धति पर रामचरितमानस भी सात कांडों में विभक्त है किन्तु इन कांडो की विभाजक रेखाएँ रामचरितमानस और रामायण के तीनों संस्करणों में अलग-अलग हैं और ये आपस में मेल नहीं खातीं। जो भी हो, तुलसीदास ने प्रायः अपना स्वतन्त्र मार्ग नहीं अपनाया है बल्कि रामायण के तीनों संस्करणों में से किसी न किसी के द्वारा अपने को संपुष्ट किया है जिसे निम्नांकित विवरणिका में देखा जा सकता है—

बालकांड :— रामचरितमानस में बालकांड रामायण के 'ग' 'क' और 'ख' संस्करण के अधिकांश भाग के समान समाप्त होता है। 'ख' संस्करण के सर्ग ७९, ८० का आशय, जो ग और क संस्करण से भिन्न है, तुलसीदास के काव्य में समाविष्ट नहीं है।

अयोध्याकांड :— रामचरितमानस में अयोध्याकांड वाल्मीकि रामायण के 'ख' और 'क' संस्करण के समान है जबकि 'ग' संस्करण में पाँच अन्य सर्ग भी समाविष्ट हैं।

अरण्यकांड :—रामचरितमानस का अरण्यकांड रामायण के 'ख' और 'क' संस्करण के समान है जब कि 'ग' संस्करण में एक सर्ग कम है।

किष्किंधाकांड :- रामचरिमानस में किष्किंधाकांड रामायण के 'ग' संस्करण के समान है। 'क' संस्करण में एक सर्ग और है जबकि 'ख' संस्करण 'ग' संस्करण से चार सर्ग पहले ही समाप्त हो जाता है।

सुन्दरकांड :— रामचरितमानस में सुन्दरकांड रामायण के 'ख' संस्करण के समान है किन्तु इसमें दो सर्ग और हैं जो 'ख' और

'ग' संस्करण में नहीं पाये जाते। 'ग' संस्करण में बीस सर्ग पहले ही कांड समाप्त हो जाता है।

लंकाकांड :– रामचरितमानस में लंकाकांड रामायण के 'क', 'ख' और 'ग' संस्करणों के युद्धकांड के समान समाप्त होता है।

उत्तरकांड :– यह कांड रामचरितमानस में सर्वथा भिन्न है।

रामचरितमानस के प्रत्येक अंश की, रामायण की संवादी पंक्तियों से तुलना और तुलसीदास द्वारा गृहीत 'ख' अथवा 'ग' संस्करणों के वर्णनों की पृथक् पृथक् परीक्षा करने के पश्चात् मैं विश्वासपूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तुलसीदास ने 'ग' और 'ख' संस्करणों का बारी-बारी से अनुसरण किया है। उक्त संस्करणों को अदल-बदल कर प्रयोग में लाने की सीमा और उनकी पुनः-पुनः आवृत्ति का निर्धारण हम निम्नलिखित ढंग से कर सकते हैं।

१. राम के जीवनारंभ (ग, १, १८) से उनके चित्रकूट आगमन (ग, २, ५६) तक तुलसीदास ने रामायण के 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है।

२. सुमंत्र के अयोध्या लौटने [ख (ग) २, ५७] से अरण्यकांड के अन्त तक, बल्कि इसके भी आगे किष्किंधाकांड के अधिकांश भाग में तुलसीदास ने रामायण के 'ख' संस्करण का अनुसरण किया है।

३. सुन्दरकांड के प्रारम्भ से राम के समुद्र पर सेतु बाँधकर सुवेल पर आरोहण करने (ग, ६, ४०) तक तुलसीदास ने रामायण के 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है।

४. राक्षसों से युद्ध प्रारम्भ करने (ख, ६, १७=ग, ६, ४२) से लेकर युद्धकांड के अन्त तक तुलसीदास ने रामायण के 'ख' संस्करण का अनुसरण किया है।

उपर्युक्त प्रकरणों में रामायण के दो संस्करणों (ख,ग) में से केवल एक में पाये जाने वाले सभी काव्यांशों का परीक्षण करने से प्राप्त प्रमाणों के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि या तो एक संस्करण के काव्यांशों का दूसरे संस्करण में कोई संवादी नहीं है और यदि है तो सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार की एकांगिता उक्त चारों वर्गों में से प्रत्येक में स्थायी रूप से दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ प्रथम और तृतीय वर्ग में तुलसीदास ने एकांतिक

रूप से 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है और द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ग में 'ख' संस्करण का । ये निष्कर्ष मुख्यतः निम्नलिखित परीक्षणों से प्राप्त होते हैं।

१–जहाँ तुलसीदास ने 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है ।

१. रामचरितमानस; १, १९१, १ अ=ग; १, १८, ८ ब (ख संस्करण में नहीं है)

[राम का जन्म चैत मास की नवमी को हुआ था।] द्रष्टव्य, अधोलिखित समानांतर काव्यांश टिप्पणी सं० २ ।

२. रामचरितमानस; १, २१०, ४ अ=ग; १, ३०, १८ ब (ख संस्करण में पाठांतर है)

[राम के बाण से मारीच को इतना तीव्र आघात पहुँचा कि वह सौ योजन की दूरी पर जाकर गिरा। 'ख' संस्करण में दूरी का उल्लेख अङ्कों में नहीं है।] द्रष्टव्य, समानांतर काव्यांश, टिप्पणी स० ६ ।

३. रामचरितमानस; २, ६, १–४=ग; २, ३, ६–२० (ख संस्करण में नहीं है)

[दशरथ की प्रार्थना को ध्यान में रखते हुये वशिष्ठ राम के राज्यारोहण के लिये आवश्यक वस्तुयें गिनाते हैं ।]

४. रामचरितमानस; २, ३७, २ अ=ग; २, १३, १७ ब (ख संस्करण में नहीं है) द्रष्टव्य, समानांतर काव्यांश, टिप्पणी सं० १७)

५. रामचरितमानस; २, ३८–३९, १=ग; २, १४, ५५ अ–६४अ (ख संस्करण में नहीं है।

[सुमंत्र दशरथ को जगाने के लिये जाते हैं और कैकेयी द्वारा, राम को तत्काल लाने का आदेश पाते हैं] 'ख' संस्करण में कैकेयी नहीं वरन् स्वयं दशरथ कैकेयी द्वारा उत्तेजित किये जाने पर राम को लाने के लिये सुमंत्र से कहते हैं।

६. रामचरितमानस; २, ८६, १–८=ग, २, ४७ (ख संस्करण में नहीं है)

[राम के साथ बन जाने वाले नागरिक प्रातःकाल उठते हैं और राम को न पाकर विलाप करने लगते हैं तथा रथ के पहिये की लीक का पता लगाने में असमर्थ होकर अयोध्या लौट आते हैं।] देखिये, समानांतर काव्यांश, टिप्पणी सं० २५ ।

७. रामचरितमानस; २, १२४, ५ और अनु०=ग, २, ५६, १६-१७ (ख संस्करण में नहीं है)

[तीनों बनवासी वाल्मीकि के आश्रम पर पहुँचते हैं]

२. जहाँ तुलसीदास ने 'ख' संस्करण का अनुसरण किया है

१. रामचरितमानस; २, १५२, ३ अ और अनु०=ख; २, ५८, २२ और अनु० (ग संस्करण में पाठांतर है)

[सुमंत्र राम और लक्ष्मण का संदेश दशरथ से कहते हैं] 'ग' संस्करण (२, ५८, २१ और अनु०) का वर्णन ठीक 'ख' संस्करण जैसा है किन्तु 'ख' संस्करण का प्रतिपेषण अर्थ की प्रतीति कराने में अधिक समर्थ है ।

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० २८ ।

२. रामचरितमानस, २, १५५, ६-१०=ख, २, ६६, ६७-६८ (ग संस्करण में पाठांतर है)

[दशरथ 'राम ! राम !' कहते हुये अन्तिम साँस लेते हैं ।]

३. रामचरितमानस, २, १६३, १ और अनु०=ख, २, ७७, ६ और अनु० (ग, २, ७८, ५ और अनु०)

[मंथरा के प्रति शत्रुघ्न का दुर्व्यवहार] यह प्रसंग रामचरितमानस के साथ ही रामायण के 'ख' संस्करण में भी भरत द्वारा कैकेयी की भर्त्सना के पश्चात् आया है जबकि 'ग' संस्करण में इसे दशरथ की अन्त्येष्ठि के तेरह दिन बाद दिखाया गया है ।

४. रामचरितमानस २, १६६, ७-८=ख, २, ७९, ३६-४० और ८०-८१ (ग संस्करण में नहीं है ।)

[भरत के ननिहाल से आने के दूसरे दिन प्रातःकाल दशरथ के मन्त्री गण सभा में एकत्र हुए । उस बैठक में वशिष्ठ भरत को सान्त्वना देते और समझाते हैं ।]

५. रामचरितमानस २, २८१, ६ ब=ख, २, ८०, १५ (ग संस्करण में नहीं है) द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ३६ ।

६. अयोध्याकांड का अन्त रामचरितमानस में उसी विन्दु पर होता है जिस विन्दु पर रामायण के 'ख' संस्करण में ['ग' संस्करण में उन

पाँच सर्गों को भी अयोध्याकांड के साथ जोड़ दिया गया है जो 'ख' संस्करण में अरण्यकांड के प्रारम्भ में सम्मिलित है—ग, २, ११६–११६]

७. रामचरितमानस ३, १-३ = ख, २, १०५ (ग संस्करण में नहीं है)

[चित्रकूट में राम और सीता के आमोद-प्रमोद का वर्णन तथा कौवे की उपकथा] रामवर्मन ने अपनी टीका में ख, २, १०५ को ग, २, ६५ के बाद प्रक्षिप्त बताकर उद्धृत किया है।

८. रामचरितमानस ३, १६, ७ = ख, ३, २३, २५, (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ४३।

९. रामचरितमानस, ३, १६, ११ अ = ख, ३, २३, ४५ (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ४४

१०. रामचरितमानस ३, २१, १ = ख, ३. ३०, ३८ (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश टिप्पणी सं० ४५

११. रामचरितमानस ३, २२, १० = ख, ३, ३१, २५-२६ (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ४६

१२. रामचरितमानस ३, २२, २८–३० = ख, ३, ३१, ४६ब-४७ (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश. टिप्पणी सं० ४८

१३. रामचरितमानस में अरण्यकांड उसी स्थल पर समाप्त होता है जिस स्थल पर रामायण के 'ख' संस्करण में। जो सर्ग 'ख' संस्करण के अरण्यकांड के अन्त में है वह 'ग' संस्करण के किष्किन्धाकांड में जुड़ा हुआ है।

३. जहाँ तुलसीदास ने 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है

१. रामचरितमानस में किष्किंधाकांड का अंत समुद्रलंघन की मंत्रणा के बाद उसी स्थल पर होता है जहाँ रामायण के 'ग' संस्करण में दिखाया गया है। (ख संस्करण में इस मत्रणा का समावेश सुन्दरकांड में हुआ है)

२. रामचरितमानस ५, १, ६–३, ५=ग, ५, १, ८५–१८७ (ख संस्करण में पाठांतर है)

[आकाश-मार्ग से जाते हुए हनुमान सबसे पहले मैनाक, फिर सुरसा और अन्त में सिंहिका से मिलते हैं। 'ख' संस्करण में इनका अनुक्रम बदल कर सुरसा, मैनाक और सिंहिका हो गया है।]

३. रामचरितमानस ५, ४=ग, ५, ३, २०–५१ ('क' (ख) संस्करण में नहीं है।)

[ग संस्करण में हनुमान की भेंट लंका से वर्णित है (=लंकापुराधिष्ठात्रि देवता) जबकि रामचरितमानस में यह भेंट लंकिनी राक्षसी से दिखायी गयी है।][13]

४. रा०च०मानस ५, २६, ३अ=ग, ५. ५४, ४० }
रा०च०मानस ५. २६, ४=ग, ५. ५४.३५-३६ } (ख संस्करण में में नहीं है)
रा०च०मानस ५, २६, ८-६=ग, ५ ४५, ४६ }

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ६७

५. रामचरितमानस ५ ६०, ५–६=ग, ६, २२. २७–३६ (ख संस्करण में नहीं है)

[समुद्र ने राम से प्रार्थना की कि वे अपने धनुष पर चढ़े हुये बाण का संधान द्रुमकुल्य पर करें और राम ने उसे स्वीकार कर लिया।]

६. रामचरितमानस ६, १३=ग, ६, ४० ((क) ख संस्करण में नहीं है।)

[रामायण में सुग्रीव द्वारा रावण को नष्ट करवाया गया है जबकि रामचरितमानस में यह कार्य राम के हाथों सम्पन्न हुआ है।]

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ७५

---

१३. तुलसीदास ने इस प्रासंगिक कथा को कुछ बदल दिया है किन्तु उसकी सामान्य रूपरेखा नहीं बदली है। ब्रह्मा की भविष्य-वाणी रामचरितमानस और रामायण दोनों में अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक जैसी है।

४. जहाँ तुलसीदास ने 'ख' संस्करण का अनुसरण किया है

१. रा०च०मानस ६, ६–८
रा०च मानस ६, १४–१६ ⎬ =ख, ६, ३३, ८–३४ (ग संस्करण में नहीं है)
रा०च०मानस ६ ३६–३७

[मन्दोदरी रावण को राम से युद्ध न करने के लिये समझाती है किन्तु वह आत्मश्लाघापूर्ण उत्तर देता है] यह प्रसंग 'ख' संस्करण में एक बार आया है किन्तु रामचरितमानस में इसकी तीन बार आवृत्ति हुई है ।]

२. रामचरितमानस ६, ५६-६० =ख,६, ८२ (ग संस्करण में नहींहै)

[हनुमान, लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने के लिये, संजीवनी बूटी लाने के लिये जाते हैं और मार्ग में भरत तथा कालनेमि के रूप में दो बाधाओं को झेलते हैं । यह वर्णन 'ख' संस्करण के अनुसार है । तुलसीदास की दृष्टि कुल मिलाकर 'ख' संस्करण पर अपेक्षाकृत अधिक सन्निविष्ट है । तदनुकूल ही उन्होंने हनुमान की पहली भेंट कालनेमि से और दूसरी भरत से करायी है तथा उनका भरत के वाण द्वारा नीचे गिरना अंकित किया है ।]

३. रामचरितमानस ६, ६१, ७–८ ब =ख, ६, २४, ७ ब–८ अ (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य, समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ७७

४. रामचरितमानस ६, ६३, ५–६ =ख, ६, ४०, ३० और अनु० (ग संस्करण में नहीं है)

[कुम्भकरण, रावण को नारद की भविष्यवाणी बताता है ।]

५. रामचरितमानस ६, १०६, ९–१० =ख, ६, ९२, ७४ब–७६ (ग संस्करण में नहीं है)

द्रष्टव्य समानान्तर काव्यांश, टिप्पणी सं० ८३

खेद है कि रामायण के 'क' संस्करण के प्रकाशित न होने के कारण मैं अपने इस शोध–कार्य में, उसका उपयोग करने से वंचित रह गया । 'क' संस्करण पर जो एक मात्र पुस्तक मुझे प्राप्त हो सकी है वह हान्स रिज[१४]

---

१४. Die westliche Razension des "Ramayana" Von Hans Wirtz, Bonn, 1894.

(Hans Wirtz) कृत ह जिसमें 'क' तथा अन्य दोनों संस्करणों के सादृश्य-मूलक स्थलों की तालिका दी गयी है। किन्तु ये स्थल अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण विस्तृत तुलना के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की दृष्टि से अपर्याप्त हैं। जहाँ तक मुझे ज्ञात है रामचरितमानस और रामायण के 'क' संस्करण के बीच सम्बन्ध का एक मात्र आधार यह है कि रामायण ६, ८२ (ख और ग संस्करण में नहीं है) रामचरितमानस ६, ८५ का पूर्णरूप से संवादी है। कथित परिच्छेद का सारांश इस प्रकार है—"विभीषण के द्वारा यह सूचना पाकर कि रावण एक ऐसा यज्ञ कर रहा है जो उसे अजेय बना देगा, राम ने हनुमान के साथ अन्य वानरों को उसे भंग करने के लिये भेजा। उन्होंने रावण के महल में जाकर, उसको सब प्रकार से अपमानजनक बातों से उत्तेजित कर, उसका ध्यान विचलित करने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्ततोगत्वा कोई दूसरा चारा न देखकर उन्होंने रानियों को घेर लिया और केश पकड़कर उन्हें घसीटना प्रारम्भ कर दिया। वे उन्हें तब तक घसीटते रहे जब तक निरीह अबलाओं की चीत्कार ने रावण को अपना यज्ञ भंग कर उनके सहायतार्थ दौड़ पड़ने के लिये विवश नहीं कर दिया।" तुलसीदास का वर्णन भी इसी प्रकार का है जो पूर्णरूप से हान्स रिज़ द्वारा प्रस्तुत रामायण (क, ६, ८२) के उक्त सारांश (पृ० ३५–३६) के मेल में है। ध्यातव्य है कि रामायण के 'क' और 'ग' संस्करणों में 'मन्दोदरी केशग्रहण' नामक सर्ग का कोई उल्लेख नहीं है। अतः यह असंदिग्ध है कि तुलसीदास ने इसे या तो रामायण के 'क' संस्करण से ग्रहण किया है अथवा 'क' सस्करण से पुरस्सरित किसी अन्य सूत्र से।

इस प्रकार इन प्रश्नों के निराकरण द्वारा अपना मार्ग प्रशस्त कर अब हमें सीधे रामायण के उन प्रसंगों की ओर बढ़ना चाहिये जिन्हें राम-चरितमानस में अब भी ढूढ़ा जा सकता है और जो अपने अग्रगामी कवि का अनुकरण करने की दृष्टि से तुलसी की उदासीनता विषयक हमारी प्रस्थापना के सुनिश्चित प्रमाण हैं। वस्तुतः इन तथ्यों को मात्र संयोग की बात नहीं कहा जा सकता जो प्रायः आकस्मिक होने के साथ ही नगण्य हुआ करती हैं। अपने समग्र रूप में ये तथ्य हमारे कथन के स्पष्टीकरण के लिये सबल तर्क भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

बालकांड

[१]

राम के भावी सहायक बंदरों को रामायण और रामचरितमानस दोनों में एक ही जैसे अभिधानों से युक्त दिखाया गया है—

रामायण— शिलाप्रहरणाः सर्वे सर्वे पादपयोधिनः ।
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे ... ... ।।
—ग, १।१७।२५-२६ (ख,१।२०।१३-१४)

रामचरितमानस— गिरि तरु नख आयुध सब ... — ... ।
—१।१८८।४

और इन बन्दरों को एक बड़ी संख्या में पर्वतों और जंगलों में प्रवेश कराया गया है—

रामायण— नानाविधाञ्छैलान काननानि च भेजिरे ।
—ग, १।१७।३२ (ख, १।२०।२०)

रामचरितमानस— गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी ।
रहे ... . ।।
—१।१८८।५

[२]

राम का जन्म चैत अथवा मधुमास के शुक्ल पक्ष की नवमी को हुआ था—

रामायण— ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ।
—ग, १।१८।८ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— नौमी तिथि मधुमास पुनीता ।
—१।१९१।१

[३]

राम सदैव लक्ष्मण के साथ रहते हैं और उन्हीं के साथ मृगया खेलने जाते हैं—

रामायण— यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ।
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति ... ... — ...।।
—ग, १।१८।३१-३२ (ख, १।१९।२४)

रामचरितमानस— बंधु सखा संग लेहिं बोलाई ।
बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
—१।२०५।१

उन्हीं के साथ वे भोजन भी करते हैं —

रामायण— मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ।
—ग, १।१८।३१ (ख, १।१९।२३)

रामचरितमानस— अनुज सखा संग भोजन करहीं ।
—१।२०५।४

राम अपने माता-पिता के परम आज्ञाकारी हैं—

रामायण— पितुः शुश्रूषणे रतः ।
—ग, १।१८। ८ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ।
—१।२०५।४

उपर्युक्त विवेचन को दृष्टि में रखते हुये यदि हम विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि रामायण और रामचरितमानस की यह अनुरूपता यद्यपि देखने में अप्रत्याशित प्रतीत हो सकती है किन्तु है बहुत ही महत्त्वपूर्ण। वस्तुतः इसमें किसी को तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिये कि तुलसीदास ने रामायण के 'ग' संस्करण के बालकांड के अठारहवें सर्ग से प्रचुर मात्रा में लाभ उठाया है।

[४]

रामचरितमानस में विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को प्राप्त करने के लिये दशरथ को प्रेरित किया है। उन्होंने इस बात की दृढ़ोक्ति भी की है कि इसमें दशरथ और उनके पुत्रों का हित निहित है। विश्वामित्र के इन दोनों तर्कों को रामायण में चिह्नांकित किया जा सकता है।

रामायण— (अ) यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ।
—ग, १।१९।१५-१६ (ख, १।२१।६)

(ब) श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि .... ॥
—ग, १।१९।१०

(स) विद्ये चास्मै प्रयच्छामि ... . ।
—ख, १।२२।११

बालकांड

[१]

राम के भावी सहायक बंदरों को रामायण और रामचरितमानस दोनों में एक ही जैसे अभिधानों से युक्त दिखाया गया है—

रामायण— शिलाप्रहरणाः सर्वे सर्वे पादपयोधिनः ।
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे ... ... ॥
—ग, १।१७।२५–२६ (ख,१।२०।१३–१४)

रामचरितमानस— गिरि तरु नख आयुध सब ... — ... ।
—१।१८८।४

और इन बन्दरों को एक बड़ी संख्या में पर्वतों और जंगलों में प्रवेश कराया गया है—

रामायण— नानाविधाञ्छैलान काननानि च भेजिरे ।
—ग, १।१७।३२ (ख, १।२०।२०)

रामचरितमानस— गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी ।
रहे ... . ॥
—१।१८८।५

[२]

राम का जन्म चैत अथवा मधुमास के शुक्ल पक्ष की नवमी को हुआ था—

रामायण— ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ।
—ग, १।१८।८ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— नौमी तिथि मधुमास पुनीता ।
—१।१९१।१

[३]

राम सदैव लक्ष्मण के साथ रहते हैं और उन्हीं के साथ मृगया खेलने जाते हैं—

रामायण— यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ।
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति ... ... — ...॥
—ग, १।१८।३१–३२ (ख, १।१९।२४)

रामचरितमानस— बंधु सखा संग लेहिं बोलाई ।
बन मृगया नित खेलहिं जाई ।।
—१।२०५।१

उन्हीं के साथ वे भोजन भी करते हैं —

रामायण— मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ।
—ग, १।१८।३१ (ख, १।१६।२३)

रामचरितमानस— अनुज सखा संग भोजन करहीं ।
—१।२०५।४

राम अपने माता-पिता के परम आज्ञाकारी हैं—

रामायण— पितुः शुश्रूषणे रतः ।
—ग, १।१८। ८ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ।
—१।२०५।४

उपर्युक्त विवेचन को दृष्टि में रखते हुये यदि हम विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि रामायण और रामचरितमानस की यह अनुरूपता यद्यपि देखने में अप्रत्याशित प्रतीत हो सकती है किन्तु है बहुत ही महत्त्वपूर्ण। वस्तुतः इसमें किसी को तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिये कि तुलसीदास ने रामायण के 'ग' संस्करण के बालकांड के अठारहवें सर्ग से प्रचुर मात्रा में लाभ उठाया है ।

[४]

रामचरितमानस में विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को प्राप्त करने के लिये दशरथ को प्रेरित किया है । उन्होंने इस बात की दृढ़ोक्ति भी की है कि इसमें दशरथ और उनके पुत्रों का हित निहित है । विश्वामित्र के इन दोनों तर्कों को रामायण में चिह्नांकित किया जा सकता है ।

रामायण— (अ) यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ।।
—ग, १।१६।१५-१६ (ख, । २।१६)

(ब) श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि ···· ···· ···· ··· ।।
—ग, १।१९।१०

(स) विद्ये चास्मै प्रयच्छामि ··· ···· ···· ···· ।
—ख, १।२२।११

रामचरितमानस— धरम सुजस प्रभु तुम कौं,
इन्ह कहँ अति कल्यान ।
--१।२०७।१२

[५]

ताड़का के आक्रमण का चित्रण दोनों काव्यकृतियों में एक ही प्रकार से हुआ है—

रामायण— श्रुत्वा चाभ्यद्रवत् क्रुद्धा.... .... ॥
--ग, १।२६।८ (ख, १।२९।७)

रामचरितमानस— सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।
--१।२०९।५

इन समानांतर पंक्तियों के भावगत सामर्थ्य पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि रामचरितमानम के 'सुनि' में वह स्वाभाविकता नहीं है जो रामायण के 'श्रुत्वा' और 'क्रुद्धा' में । वाल्मीकि की ताड़का राम के धनुष का भयानक घोष सुनकर उत्तेजनावश क्रुद्ध होती है जबकि तुलसीदास की ताड़का अपने सम्बन्ध में राम को संकेत द्वारा बताते हुए विश्वामित्र की आवाज़ मात्र सुनकर क्रोधित हो उठती है । कहना न होगा, विश्वामित्र की आवाज़ उस राक्षसी को इतने भयानक रूप से क्रोधित करने के लिये पर्याप्त नहीं प्रतीत होती है ।

[६]

राम के बाण से आहत मारीच सिन्धु के उस पार सौ योजन की दूरी पर गिरता है । (रामायण के अनुसार वह सिन्धु में ही गिरता है) :

रामायण— सम्पूर्णं योजनशतं क्षिप्तः सागरसम्प्लवे ॥
—ग, १।३०।१८

रामचरितमानस— सत जोजन गा सागर पारा ।
—१।२१०।४

[७]

तुलसी के राम सुबाहु का बध 'पावक सर' से करते हैं (१।२१०।५) जिसे रामायण की समानांतर पंक्तियों में 'अस्त्रमाग्नेयं' (ग, १।३०।२२; ख, १।३३।१६) के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

[८]

राम-जामदग्न्य प्रसंग में दोनों काव्यकृतियों की वर्णन-रेखाएं प्रायः एक सी हैं—

रामायण— (अ) जटामण्डलधारिणम् ।

—ग, १।७४।१७ (ख, १।७६।१८)

(ब) स्कन्धे चासज्ज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम् ।
प्रगृह्य शरमुग्रं च ... ... ।।

—ग, १।७४।१९ (ख, १।७६।२०)

रामचरितमानस—(अ) सीस जटा ... ... ।

—१।२६८।५

(ब) धनु सर कर कुठार कल काँधे ।

—१।२६८।८

रामायण के राम परशुराम से कहते हैं कि मैं आपको केवल ब्राह्मण होने के नाते छोड़ रहा हूँ । रामचरितमानस में यह कथन लक्ष्मण के द्वारा कराया गया है—

रामायण— ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे .... ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ।।

—ग, १।७६।६ (ख, १।७७।४०)

रामचरितमानस— बिप्र बिचारि बचउँ .. .. ।

—१।२७६।६

[६]

अपने चारो पुत्रों के विवाह के पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल दशरथ बड़े सबेरे उठकर ब्राह्मणों को चार लाख गायें दान देते हैं :

रामायण— प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ।।
गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः ।
एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः ।।
सुवर्णशृङ्ग्यः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः ।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः ।।

—ग, १।७२।२१-२३ (ख १।७४।२७-२९)

रामचरितमानस— (अ) बड़े भोर भूपति मनि जागे ।

—१।३३०।२

(ब) चारि लच्छ बर धेनु मँगाई । काम सुरभि सम सील सुहाई ।।
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं । मुदित महिप महिदेवन दीन्हीं ।।

—१।३३१।२-३

रामचरितमानस— धरम सुजस प्रभु तुम कौं,
इन्ह कहँ अति कल्यान ।
—१।२०७।१२

[५]

ताड़का के आक्रमण का चित्रण दोनों काव्यकृतियों में एक ही प्रकार से हुआ है—

रामायण— श्रुत्वा चाभ्यद्रवत् क्रुद्धा.... .... ।।
—ग, १।२६।८ (ख, १।२९।७)

रामचरितमानस— सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।
—१।२०९।५

इन समानांतर पंक्तियों के भावगत सामर्थ्य पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि रामचरितमानस के 'सुनि' में वह स्वाभाविकता नहीं है, जो रामायण के 'श्रुत्वा' और 'क्रुद्धा' में। वाल्मीकि की ताड़का राम के धनुष का भयानक घोष सुनकर उत्तेजनावश क्रुद्ध होती है जबकि तुलसीदास की ताड़का अपने सम्बन्ध में राम को संकेत द्वारा बताते हुए विश्वामित्र की आवाज़ मात्र सुनकर क्रोधित हो उठती है । कहना न होगा, विश्वामित्र की आवाज़ उस राक्षसी को इतने भयानक रूप से क्रोधित करने के लिये पर्याप्त नहीं प्रतीत होती है ।

[६]

राम के वाण से आहत मारीच सिन्धु के उस पार सौ योजन की दूरी पर गिरता है । (रामायण के अनुसार वह सिन्धु में ही गिरता है) :

रामायण— सम्पूर्णं योजनशतं क्षिप्तः सागरसम्प्लवे ।।
—ग, १।३०।१८

रामचरितमानस— सत जोजन गा सागर पारा ।
—१।२१०।४

[७]

तुलसी के राम सुबाहु का बध 'पावक सर' से करते हैं (१।२१०।५) जिसे रामायण की समानांतर पंक्तियों में 'अस्त्रमाग्नेयं' (ग, १।३०।२२; ख, १।३३।१६) के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

[८]

राम-जामदग्न्य प्रसंग में दोनों काव्यकृतियों की वर्णन-रेखाएं प्रायः एक सी हैं—

रामायण— (अ) जटामण्डलधारिणम्।

—ग, १।७४।१७ (ख, १।७६।१८)

(ब) स्कन्धे चासज्ज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम्।
प्रगृह्य शरमुग्रं च ... ... ॥

—ग, १।७४।१९ (ख, १।७६।२०)

रामचरितमानस— (अ) सीस जटा ... ... ।

—१।२६८।५

(ब) धनु सर कर कुठार कल कांधे।

—१।२६८।८

रामायण के राम परशुराम से कहते हैं कि मैं आपको केवल ब्राह्मण होने के नाते छोड़ रहा हूँ। रामचरितमानस में यह कथन लक्ष्मण के द्वारा कराया गया है—

रामायण— ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे ... ... ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥

—ग, १।७६।६ (ख, १।७७।४०)

रामचरितमानस— बिप्र बिचारि बचउँ .. .. ।

—१।२७६।६

[६]

अपने चारो पुत्रों के विवाह के पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल दशरथ बड़े सबेरे उठकर ब्राह्मणों को चार लाख गायें दान देते हैं :

रामायण— प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम्॥
गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः।
एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः॥
सुवर्णशृङ्ग्यः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः॥

—ग, १।७२।२१-२३ (ख १।७४।२७-२८)

रामचरितमानस— (अ) बड़े भोर भूपति मनि जागे।

—१।३३०।२

(ब) चारि लच्छ बर धेनु मँगाई। काम सुरभि सम सील सुहाई॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन दीन्हीं॥

—१।३३१।२-३

अयोध्याकांड

[१०]

अपने जीते जी राम का राज्याभिषेक देखना ही राजा दशरथ की अंतिम अभिलाषा है--

रामायण— अथ राज्ञो बभूवैवं वृद्धस्य चिरजीविन ।
प्रीतिरेषा कथं रामो राजा स्यान्मयि जीवति ।।
एषा ह्यस्य परा प्रीतिर्हृदि सम्परिवर्तते ।
कदा नामसुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमहं प्रियम् ।।
--ग, २।१।३६-३७ (ख २।१। ८)

रामचरितमानस-(अ) सब के उर अभिलासु अस ··· ··· ···· ।
आपु अछत जुबराज पदु रामहिं देउ नरेस ।।
--२।१।१०

(ब) मोहिं अछत यहु होइ उछाहू ।
—२।४।३

रामचरितमानस के उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में से प्रथम में नागरिकों अभिलाषा का वर्णन किया गया है और रामायण के उद्धरण में दशरथ की की अभिलाषा का वर्णन है किन्तु अभिलाषाएं दोनों में हैं एक जैसी। तुलना का केन्द्रीय बिन्दु 'मयि जीवति' है जिसका शब्दानुवाद 'आपु अछत' और 'मोहिं अछत' के रूप में किया गया है। यद्यपि रामचरितमानस के पहले उद्धरण में 'आपु अछत' प्रयोग अनावश्यक और असमीचीन है, तो भी यहाँ सादृश्य अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो गया है।

[११]

अयोध्या के सभी नर-नारी राम का राज्याभिषेक देखने की अभिलाषा में अधीर होकर प्रातःकाल होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं—

रामायण— तदा ह्ययोध्यानिलय: सस्त्रीबालाकुलो जनः ।
रामाभिषेकमाकांक्षन्नाकांक्षन्नुदयं रवेः ।।
--ग २।५।१९ (ख २।४।१९)

रामचरितमानस— (अ) कहहिं परस्पर लोग लुगाई ।
काल्हि लगन भलि केतिक बारा ।।
--२।११।३-४

(ब) सकल कहहिं कब होइहि काली ।
--२।११।६

[१२]

वाल्मीकि ने मंथरा के मनोभाव का वर्णन करने के लिये 'दह्यमाना क्रोधेन' (ग,२,७,१३) और 'दह्यमानाऽनलेनेव' (ग,२,७,२१) जैसे लाक्षणिक प्रयोगों का सहारा लिया है। गोस्वामी जी को ('राम तिलकु सुनि) भा उर दाहू' (२, १३, २) लिखने की प्रेरणा निश्चय ही वाल्मीकि के इन्हीं पदों से मिली होगी।

[१३]

सूर्यवंश का यह नियम रहा है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राजा बने और छोटे भाई उसके आदेशों का पालन करें। वाल्मीकि ने इस तर्क को राम के सिंहासनासीन होने के पक्ष में अयोध्याकांड में अनेक बार प्रस्तुत किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसे कैकेयी के द्वारा मंथरा को समझाने के लिये प्रयुक्त किया है।

रामायण— (अ) अस्मिन् कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येभिषिच्यते ।
अपरे भ्रातरस्तस्मिन् प्रवर्तन्ते समाहिताः ।।
सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते ।
राज्ञामेतत्समं तत्स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः ।।
—ग, २।७३।२०, २२ (ख संस्करण में नहीं है)

(ब) ज्येष्ठस्य राजता नित्तमुचिता हि कुलस्य नः ।
—ग, २।७९।७ (ख,२,८६।१०)

(स) शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजा न कनीयान् भवेन्नृपः ।।
– ग, २।१०१।२ (ख २।१११।२)

रामचरितमानस— जेठ स्वामि सेवक लघु भाई ।
यह दिनकर कुल रीति सुहाई ।।
—२।१५।३

[१४]

दशरथ अपने हाथों से धरती पर लेटी हुई क्रोधातुर कैकेयी का स्पर्श करते हैं—

रामायण— परिमृज्य च पाणिभ्याम्··· ··· ··· — ।

—ग, २।१०।२७अ (ख, २।९।६अ)

रामचरितमानस— परसत पानि ··· ··· — — ··· — ।

—२।२५।८

(१५)

दशरथ कैकेयी से पूछते हैं कि वह कौन है जिसने तुम्हें क्लेश पहुंचाने का दुस्साहस किया है और उसे दंडित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए ? अंत में वे यह भी कहते हैं कि मैं स्वयं और मेरा सम्पूर्ण परिवार तुम्हारे वश में है ।

रामायण— (············व्याधिमाचक्ष्व भामिनि) ।
कस्य वापि प्रियं कार्यं केन वा विप्रियं कृतम् ।।३१।।
कः प्रियं लभतामद्य को वा सुमहदप्रियम् ।
······························ ।।३२।।
अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम् ।
दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिंचनः ।।३३।।
अहं च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः ।
—ग, २।१०।३१ और अनुवर्ती (ख, २।९।१० और अनुवर्ती)

रामचरितमानस— अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा ।
केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा ।।
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू ।
कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ।।
प्रिया प्रान सुत सरबस मोरे ।
परिजन प्रजा सकल बस तोरे ।।
—२।२६।१-२, ५

यहाँ वस्तु और रूप दोनों ही दृष्टियों से समरूपता दिखाई पड़ती है ।

(१६)

कैकेयी इस बात पर बल देती है कि राजा को अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये । वह ऐसे लोगों के उदाहरण भी प्रस्तुत करती है

जिन्होंने अपने वचन का पालन करते हुए तन-धन का परित्याग कर दिया है। यह प्रसंग रामायण और रामचरितमानस दोनों में एक जैसा है, केवल उदाहरणों में किंचिदंतर लक्षित होता है। वाल्मीकि ने शिवि, अलर्क और सगर के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं (ग, २।१२।४३-४४ और ग, २।१४।४-५) जबकि तुलसीदास ने शिवि, दधीचि और बलि के (२।३०।७)। वैसे बलि का उदाहरण रामायण में अन्यत्र आया है। (ग, २।१४।११; ख, २।११।६-१०)।

(१७)

दशरथ की कामना है कि राम के निर्वासन की तिथि का प्रभात कभी न आए—

रामायण— **न प्रभातं त्वेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते ॥**

—ग, २।१३।१७ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— **(भुवालू)···हृदय मनाव भोरु जनि होई।**

—२।३७।२

(१८)

राज्याभिषेक के लिये पूर्व निश्चित तिथि को प्रातःकाल दशरथ ने राम को बुलवाया। पिता को धरती पर दयनीय दशा में चुपचाप पड़े देखकर राम को यह संदेह हुआ कि राजा उनसे निश्चय ही अप्रसन्न हैं। अतः उन्होंने माता कैकेयी से पिता की अप्रसन्नता का कारण पूछा—

रामायण— **कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद् येन मे पिता।**
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व ··· ··· ··· ··· ···॥

—ग २।१८।११ (ख, २।१५।१८)

रामचरितमानस— **भा मोहि ते कछु बड़ अपराधू ॥**
ता ते मोहि न कहत कछु राऊ।
मोरि सपथ तोहि कहु सति भाऊ ॥

—२।४२।७-८

(१९)

तुलसी के दशरथ शिव से प्रार्थना करते हैं कि राम उनकी अवज्ञा कर बन जाने से इनकार करदें (२।४४।६-१०)। वाल्मीकि के दशरथ की भी यही अभिलाषा है (ग, २।१२।८६)।

[२०]

बनवास की अवधि में सीता को साथ रहने से रोकने के लिये, राम जंगल की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए भूमिशयन, वल्कल-वसन, कंद-मूल-फल पर जीवनयापन करने की बात कहते हैं और कभी-कभी वह भी न मिलने पर उपवास करने की चर्चा करते हैं—

रामायण— सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंमग्नासु भूतले ।
अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना ।
फलैर्वृक्षावपतितैः .... ।।
उपवासश्च कर्तव्यो .... ।
जटाभारश्च कर्त्तव्यो वल्कलाम्बरधारणम् ।।
यथालब्धेन कर्त्तव्यः संतोषः......... ।
यथाहारैर्वनचरैः................ ।।

—ग, २।२८।११, १२–१३ और १७

अन्तिम बात निम्नलिखित श्लोक में और भी विशद रूप से व्यक्त हुई है—

वनेश्व अलभ्यमाने च वन्ये मूलफले पुन ।
वहून्य अहानि वस्तव्यम निराहारैर वनाश्रयैः ।।२२।।

—ख, २।२८।२२ (क संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— भूमि सयन बलकल बसन असन कंद फल मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ।।

—२।६२।९-१०

[२१]

राम की उपर्युक्त बातों का उत्तर देती हुई सीता कहती हैं कि आपके संग रहने पर कुश का स्तरण मेरे लिए अत्यन्त सुखमय सेज तथा कंद मूलादि व्यंजन के सदृश स्वादिष्ट प्रतीत होंगे—

रामायण— शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा ।
कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात् सुखतरं ततः ।।१४।।
पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु ।
दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ।।१५।।

—ग, २।३०।१४-१५ (ख, २।३०।१६-१७)

रामचरितमानस— कुस किसलय साथरी सुहाई ।
प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ॥
कंद मूल फल अमिय अहारु ।
—२।६६।२-३

सीता दृढ़ भाव से यह भी कहती हैं कि मैं कभी थकान का अनुभव नहीं करूँगी—

रामायण— न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रमः ।
—ग, २।३०।११ (ख, २।३०।१२)

रामचरितमानस— मोहि मग चलत न होइहि हारी ।
—२।६७।१

[२२]

सीता को पति का अनुगमन करने की अनुमति प्राप्त हो जाने के पश्चात् लक्ष्मण भी संग चलने की कामना से भाई राम के पैरों पर गिर पड़ते हैं—

रामायण— एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः ।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
—ग, २।३१।१-२ (ख, २।३१।४-५)

रामचरितमानस— समाचार जब लछिमन पाए ।
व्याकुल बिलख-बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा ।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
—२।७०।१-२

[२३]

रामचरितमानस में सुमित्रा लक्ष्मण को राम और सीता का ध्यान रखने का निर्देश देती हैं ताकि उनको सुख प्राप्त हो और वे पिता, माता, मित्र, सम्बन्धी एवं अयोध्या के सुख को भूल जाएँ । इस प्रसंग को रामायण में प्राप्त सीता के उस कथन के समानांतर रखा जा सकता है जहाँ वे कहती हैं कि मैं बन में निवास करती हुई कभी भी माता-पिता एवं परित्यक्त महल के विषय में नहीं सोचूँगी—

रामायण— न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः ।
—ग, २।३०।१६ (ख, २।३०।१८)

रामचरितमानस— उपदेश यह जेहि जात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसराव्हीं ।।
— २।७५।९-१०

[२४]

सुमित्रा ने, राम को पिता दशरथ के समान, सीता को अपने समान और बन को अयोध्या के समान प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिये लक्ष्मण से कहा—

रामायण— रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि ··········· ··· ।।
—ग, २।४०।९ (ख २।३९।११-१२)

रामचरितमानस— तात तुम्हारि मातु बैदेही ।
पिता राम सब भाँति सनेही ।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू ।
—२।७४।२-३

[२५]

बनवास के लिये जाते हुए राम के साथ लगे हुए अयोध्यावासी जब प्रथम पड़ाव पर सोकर प्रातःकाल उठे तब राम को न पाकर विलाप करने लगे और उनके अभाव में अपने जीवन को कोसने लगे—

रामायण— इहैव निधनं याम महाप्रस्थानमेव वा ।
रामेण रहितानां नो किमर्थं जीवितं हितम् ।।
······इतीव······विलपन्ति······ ।
—ग, २।४७।७ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— धिग जीवन रघुबीर बिहीना ।
जौं पइ प्रिय बियोग बिधि कीन्हा ।।
यहि बिधि करत प्रलाप कलापा ।
—२।८६।५-७

[२६]

राम जब सुमंत्र से विदा होने लगे तब उन्होंने उनसे विनयपूर्वक वही करने के लिए कहा जिससे पिता को उनकी (राम की) चिन्ता में दुःख न हो ।

रामायण— यथा दशरथो राजा मां न शोचेत् तथा कुरु ।।
— ग, २।५२।२२ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— सब बिधि सोइ कर्तव्य तुम्हारे ।
दुख न पाव पितु सोच हमारे ।।
—२।८६।२

[२७]

सीता गंगा से प्रार्थना करती है—

रामायण— वैदेही प्रांजलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ।।
पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ।
निदेशं पालयत्वेनं गंगे त्वदभिरक्षितः ।।
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ।।
ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ।
यक्ष्ये प्रमुदिता गंगे सर्वकामसमृद्धिनी ।।
....
पुनरेव महाबाहुर्मया भ्रात्रा च सङ्गतः ।
अयोध्यां वनवासात् तु प्रविशत्वनघोऽनघे ।।
—ग, २।५२।८२-८५ और ९१

रामचरितमानस— सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी ।
मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।।
पति देवर संग कुसल बहोरी ।
आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ।।
—२।१०२।२-३

[२८]

राम, लक्ष्मण और सीता को बन में पहुँचाकर लौटने पर सुमंत्र ने राम और लक्ष्मण के संदेश राजा से कहे—

रामायण— वक्तव्यो भरतो वचनान् मम ।
... ... ।।२२।।
त्वया सुश्रूष्यमाणो मम न शोचति यथा नृपः ।
मत्स्नेहदर्हसि तथा कर्तुमित्यपि निश्चयम् ।।२३।।
समं मातृषु सर्वासु वर्तेथा इति चाब्रवीत् ।
... ... ।।२४।।
ईषद्रोषपरीतस्तु सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।...
—ख, २।२५।२२ और अनु० (ग,२।५८।२१ और अनु०)

रामचरितमानस— कहब संदेसु भरत के आए ।
सेयहु मातु सकल सम जानी ।
तात भाँति तेहि राखब राऊ ।
सोच मोर जेहि करइ न काऊ ।।
लखन कहे कछु बचन कठोरा ।
—२।१५२।३अ और अनु०

जहाँ तक सीता का सम्बन्ध है, रामायण और रामचरितमानस दोनों में सुमंत्र कहते हैं कि वह इतनी करुणार्द्र हो गई थीं कि उनके मुख से शब्द ही नहीं मुखरित हुए । दोनों कृतियों की यह समरूपता विशेष ध्यान देने योग्य है । सुमंत्र के बिदा होते समय न तो वाल्मीकि ने सीता का उल्लेख किया है और न ही तुलसीदास ने । यह कहना तर्क संगत न होगा कि ऐसा संयोग वश हो गया है । निश्चय ही यहाँ तुलसीदास ने वाल्मीकि के पगचिह्नों का अनुगमन किया है—

रामायण— जानकी तु विनिश्वस्य बाष्पच्छन्नस्वरा नृप ।
भूतोपसृष्टचित्तेव वीक्षमाणा समन्ततः ।।
अदृष्टपूर्व व्यसना राजपुत्री यशस्विनी ।
पर्यश्रुवदना दीनानैव मां किञ्चिदब्रवीत् ।।
उद्वीक्षमाणा भर्त्तारं मुखेन परिशुष्यता ।
मुमोच केवलं बाष्पं मां निवृत्तं अवेक्ष्य सा ।।
—ख, २।५८।३४ और अनु० (ग, २।५८।३४ और अनु०)

रामचरितमानस— कहि प्रनाम कछु कहन लिय,
सिय भइ सिथिल सनेह ।
थकित बचन लोचन सजल
पुलक पल्लवित देह ।।
—२।१५२।९-१०

[२९]

रामायण में बनवासी राम और लक्ष्मण गंगा को पार करने से पूर्व अपने केश का जटाजूट बनाते हैं (ख,२।५२।२ और अनु०=ग, २।५२।६८ और अनु०) । इस प्रसंग को तुलसी ने यथास्थान नहीं रखा है । राम को पहुँचाकर लौटने पर जब सुमंत्र राजा दशरथ को यह बताने लगते हैं कि उनसे विदा होने से पहले राम ने क्या-क्या किया तब वे जटाजूट बनाने वाले प्रसंग को उठाते हैं—

होत प्रात बट छीर मँगावा ।
जटा मुकुट निज सीस बनावा ।।
रामचरितमानस—२। १५१। २

यहाँ 'मँगावा' शब्द सम्भवतः इस बात की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त है कि इन पंक्तियों की रचना करते समय गोस्वामी जी के सम्मुख रामायण का वह श्लोक अवश्य रहा होगा जिसमें रामने गुह को 'न्यग्रोधक्षीरमानय' (ख, २,५२,२=ग, २,५२।६८) का आदेश दिया था ।

[३०]

सुमंत्र ने यह भी कहा कि उनके घोड़े, राम से वियुक्त होने पर, मुड़-मुड़कर उसी ओर देख रहे थे जिधर वे गये तथा उनके वियोग में हिन-हिनाते हुए अश्रुपात कर रहे थे—

रामायण— ततो मम निवृत्तस्य तुरगा बाष्पविक्लवाः ।
रामम् इवाऽनुपश्यन्तो हेषमाना विचुक्रुशुः ।।
—ख, २।५९।४(ग २।५६।१)

रामचरितमानस— देखि दखिन दिसि, हय हिहिनाहीं ।
.. .. ।।
नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल,
मोचहिं लोचन बारि ।
—२।१४२।८ अ-९

[३१]

तुलसीदास ने दशरथ-मरण का जो वर्णन किया है वह अपेक्षाकृत विस्तृत होते हुए भी रामायण के मेल में है । वस्तुतः रामचरितमानस में एतद्विषयक उन्हीं तथ्यों को ग्रहण किया गया है जो रामायण में आये हैं । उदाहरणार्थ (१) रनिवास में स्त्रियों का विलाप (ख, २, ६८, ५०-५१; ग, २, ६६, १६-२३; रामचरितमानस, २, १५६, ३-४) (२) नागरिकों का मनस्ताप और रुदन (ख, २, ६८, ५२-५५; ग, २, ६६, २४-२६; रामचरितमानस, २, १५६, ५-६) तथा (३) प्रातःकाल होने पर सभासदों का एकत्र होना (ख, २, ६६, १; ग, २, ६७, १-२, रामचरितमानस, २, १५६, ८) ।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रसंग से सम्बद्ध रामायण की दो बातें रामचरितमानस में निर्विवाद रूप से द्रष्टव्य हैं जहाँ तुलसीदास के अनुसार प्रजा ने दशरथ-मरण पर दुःख प्रकट करते हुए कहा कि सूर्यवंश का सूर्यास्त

रामचरितमानस— कहब संदेसु भरत के आए ।
सेयहु मातु सकल सम जानी ।
तात भाँति तेहि राखब राऊ ।
सोच मोर जेहि करइ न काऊ ॥
लखन कहे कछु बचन कठोरा ।
—२।१५२।३अ और अनु०

जहाँ तक सीता का सम्बन्ध है, रामायण और रामचरितमानस दोनों में सुमंत्र कहते हैं कि वह इतनी करुणार्द्र हो गई थीं कि उनके मुख से शब्द ही नहीं मुखरित हुए । दोनों कृतियों की यह समरूपता विशेष ध्यान देने योग्य है । सुमंत्र के बिदा होते समय न तो वाल्मीकि ने सीता का उल्लेख किया है और न ही तुलसीदास ने । यह कहना तर्क संगत न होगा कि ऐसा संयोग वश हो गया है । निश्चय ही यहाँ तुलसीदास ने वाल्मीकि के पगचिह्नों का अनुगमन किया है—

रामायण— जानकी तु विनिश्वस्य बाष्पच्छन्नस्वरा नृप ।
भूतोपसृष्टचित्तेव वीक्षमाणा समन्ततः ॥
अदृष्टपूर्व व्यसना राजपुत्री यशस्विनी ।
पर्यश्रुवदना दीनानैव मां किञ्चिदब्रवीत् ॥
उद्वीक्षमाणा भर्त्तारं मुखेन परिशुष्यता ।
मुमोच केवलं बाष्पं मां निवृत्तं प्रवेक्ष्य सा ॥
—ख, २।५८।३४ और अनु० (ग, २।५८।३४ और अनु०)

रामचरितमानस— कहि प्रनाम कछु कहन लिय,
सिय भइ सिथिल सनेह ।
थकित बचन लोचन सजल
पुलक पल्लवित देह ॥
—२।१५२।९-१०

[२६]

रामायण में बनवासी राम और लक्ष्मण गंगा को पार करने से पूर्व अपने केश का जटाजूट बनाते हैं (ख,२।५२।२ और अनु० = ग, २।५२।६८ और अनु०) । इस प्रसंग को तुलसी ने यथास्थान नहीं रखा है । राम को पहुँचाकर लौटने पर जब सुमंत्र राजा दशरथ को यह बताने लगते हैं कि उनसे विदा होने से पहले राम ने क्या-क्या किया तब वे जटाजूट बनाने वाले प्रसंग को उठाते हैं—

होत प्रात वट छीरु मँगावा ।
जटा मुकुट निज सीस बनावा ।।
रामचरितमानस—२। १५१। २

यहाँ 'मँगावा' शब्द सम्भवतः इस बात की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त है कि इन पंक्तियों की रचना करते समय गोस्वामी जी के सम्मुख रामायण का वह श्लोक अवश्य रहा होगा जिसमें रामने गुह को 'न्यग्रोधक्षीरमानय' (ख, २,५२,२=ग, २,५२।६८) का आदेश दिया था ।

[३०]

सुमंत्र ने यह भी कहा कि उनके घोड़े, राम से वियुक्त होने पर, मुड़–मुड़कर उसी ओर देख रहे थे जिधर वे गये तथा उनके वियोग में हिनहिनाते हुए अश्रुपात कर रहे थे—

रामायण— ततो मम निवृत्तस्य तुरगा बाष्पविक्लवाः ।
रामम् इवाऽनुपश्यन्तो हेषमाना विचुक्रुशुः ।।
—ख, २।५८।४(ग २।५९।१)

रामचरितमानस— देखि दखिन दिसि, हय हिहिनाहीं ।
.. .. ।।
नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल,
मोचहिं लोचन बारि ।
—२।१४२।८ अ-९

[३१]

तुलसीदास ने दशरथ-मरण का जो वर्णन किया है वह अपेक्षाकृत विस्तृत होते हुए भी रामायण के मेल में है। वस्तुतः रामचरितमानस में एतद्विषयक उन्हीं तथ्यों को ग्रहण किया गया है जो रामायण में आये हैं। उदाहरणार्थ (१) रनिवास में स्त्रियों का विलाप (ख, २, ६८, ५०-५१; ग, २, ६६, १६-२३; रामचरितमानस, २, १५६, ३-४) (२) नागरिकों का मनस्ताप और रुदन (ख, २, ६८, ५२-५५; ग, २, ६६, २४-२६; रामचरितमानस, २, १५६, ५-६) तथा (३) प्रातःकाल होने पर सभासदों का एकत्र होना (ख, २, ६९, १; ग, २, ६७, १-२, रामचरितमानस, २, १५६, ८) ।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रसंग से सम्बद्ध रामायण की दो बातें रामचरितमानस में निर्विवाद रूप से द्रष्टव्य हैं जहाँ तुलसीदास के अनुसार प्रजा ने दशरथ–मरण पर दुःख प्रकट करते हुए कहा कि सूर्यवंश का सूर्यास्त

हो गया और इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति ने कैकेयी को इस दुष्कृत्य के लिये बुरा-भला कहा। ये बातें रामायण की निम्नांकित पंक्तियों से संदर्भित की जा सकती हैं—

हतप्रभा द्यौरिव भास्करं बिना॰॰॰॰ ।
रराज सा नैव भृशं महापुरी ॰॰॰ ।।
नराश्च नार्यश्च भृशार्तमानसा,
विगर्ह्यंतो भरतस्य मातरम् ।।

—ख, २।६८।५४-५५ (ग, २।६६।२८-२९)

[३२]

भरत की राजगृह से अयोध्या की वेगवान् यात्रा का वर्णन वाल्मीकि ने विस्तारपूर्वक किया है (ख, २, ७३; ग, २, ७१), जबकि तुलसीदास ने इस प्रसंग को आधी चौपाई से भी कम में कहकर छुट्टी पा ली है—

चले समीर वेग हय हाँके
नाघत सरित सैल बन बाँके ।

—रामचरितमानस २।१५८।१

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि तुलसीदास ने आधी चौपाई में ही वाल्मीकि के विस्तृत वर्णन का सारांश पूर्णरूप से समेट लिया है; जिसमें भरत को सरिताओं जंगलों और पर्वतों को पार कर घोड़ों को पवन की प्रतियोगिया में ले जाते हुए दिखाया गया है। जहाँ तक घोड़ों के पवन की प्रतियोगिता में चलने की बात है, मैं समझता हूँ कि निम्नलिखित श्लोक यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि 'चले समीर वेग' जैसी अभिव्यक्ति करते समय तुलसीदास के मन में रामायण अवश्य रहा होगा—

राज पुत्रो महाबाहुः अति तीक्ष्णोपशोभितम् ।
भद्रम् भद्रेन यानेन मारुतः खमिवाभ्ययात् ।।

—ख, २।७३।७ ग, २।७१।८)

[३३]

राम के निर्वासन का समाचार मिलने पर भरत व्याकुल हो जाते हैं। कैकेयी की सांत्वना उन्हें जले पर नमक के समान लगती है—

विकल बिलोकि सुतहिं समुझावति ।
मनहुँ जरे पर लोन लगावति ।।

—रामचरितमानस, २।१६१।१

जले पर नमक लगाने का उदाहरण दुःखी को और दुःख पहुँचाने के भाव की व्यंजना करता है जो रामायण के भरत–कैकेयी–संवाद–प्रसंग में आया है। वस्तुतः रामचरितमानस और रामायण दोनों में यह उपमान एक ही प्रसंग में भरत की वेदना को प्रकट करने के लिये प्रयुक्त है—

व्रणे क्षारं विनिक्षिप्तं दुःखे दुखं निपातितम्।
—ख, २।७५।१ अ

दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः।
—ग, २।७३।३अ

[३४]

तुलसीदास के अनुसार भरत जब शृंगवेर में उस वृक्ष के नीचे पहुँचते हैं जहाँ राम और सीता ने कुशासन पर विश्राम किया था तब वहाँ उन्हें सीता के आभूषण के कुछ कनक-विन्दु प्राप्त होते हैं। भरत उन्हें श्रद्धाभिभूत होकर शिरोधारण कर लेते हैं। रामायण के भरत को भी शृंगवेर पहुँचने पर कनक-विन्दु प्राप्त होते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि दोनों ही महाकवियों ने 'कनक विन्दु' शब्द का प्रयोग किया है :—

रामायण—
मन्ये साभरणा सुप्ता यथा स्वभवने पुरा,
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते शोर्णाः कनक बिन्दवः।
—ख, २।९६।१६ (ग, २।८८।१४)

रामचरितमानस—
कनक विन्दु दुइ चारिक देखे।
राखे सीस सिया सम लेखे॥
—२।१९९।३

[३५]

वाल्मीकि ने लिखा है कि भरत जब राम को मनाने के लिये बन जा रहे थे तब वे मैत्रमुहूर्त (सूर्योदय के तीसरे पहर) में अपने अनुचरों के साथ गंगा पारकर प्रयाग पहुँचे। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गंगा को पार करने में भरत को दो मुहूर्त लगे। तुलसीदास ने रामचरितमानस में ठीक इसी समय का अंकन किया है :—

रामायण—
सा सर्वा ध्वजिनी गंगां दाशैः संतारिता तदा।
मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम्॥
—ख, २।९७।२७ (ग २।८८।२१

रामचरितमानस— दण्ड[15] चारि महँ भा सब पारा।

—२।२०२।९

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेस प्रयाग।

—२।२०३।दोहा

[३६]

तुलसीदास कहते हैं कि राम ने भरत के साथ आये हुए पुरवासियों को अत्यन्त दुःखी देखकर सान्त्वना दी और गले से लगाया। तुलसीदास ने अपने पाठकों को पुनः यह भी अवगत कराया है कि सर्वशक्तिमान् भगवान का इतने अधिक लोगों से क्षण भर में मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है (रामचरितमानस,२, २४४,१-४)। तुलसीदास की अपनी विशिष्ट काव्यशैली से प्रभावित होने के बावजूद इस वर्णन पर रामायण की निम्नांकित पंक्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है—

तान्नरान् बाष्पपूर्णाक्षान् समीक्ष्यच सुदुःखितान्।
पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः॥

--ख, २।१११।५१ (ग, २।१०३।४७)

[३७]

राम को; दशरथ-मरण की सूचना जिन शब्दों में मिलती है उन्हें तुलसीदास ने 'कुलिस कठोर···कटु बानी' की संज्ञा दी है। वाल्मीकि ने भी इस अवसर पर 'वाग्वज्रम्' शब्द का प्रयोग किया है। दोनों कवियों में मात्र इतना अन्तर है कि वाल्मीकि ने वर्णन को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार दे दिया है—

तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा।
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं निशम्य तु॥
प्रगृह्य बाहू रामोऽथ पुष्पिताग्रो द्रुमो यथा।
वने परशुना कृत्तस्तथा भूमौपपातह:॥

--ख, २।१११।९ १०(ग, २।१०३।२-३)

[३८]

भरत किसी विचारणा से पूर्व राम की चरणपादुका से परामर्श करते हैं:—

१५—एक मुहूर्त में लगभग ४८ मिनट होते हैं। मुहूर्त के आधे को दण्ड कहते हैं जो लगभग २४ मिनट का होता है।

रामायण— ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यऽऽर्यपादुके ।
सबाल व्यजनं तत्र धारयामास च स्वयम् ।।
पादुके त्वभिषिच्यऽऽथ नन्दिग्रामे पुरोत्तमे ।
भरतः शासनं सर्वं पादुकाभ्यां निवेदयत् ।।
-ख, २।१२७।१६-१७ (ग २।११५।२३-२४)

रामचरितमानस— नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि-माँगि आयसु करत राजकाज बहुभाँति ।।
२।३२५।६-१०

[३९

शोक की व्यंजना के लिये गोस्वामी तुलसीदास ने एकाधिक स्थलों पर अंगूठे से धरती कुरेदने का वर्णन किया है। ऐसे वर्णन रामायण में भी प्राप्त होते हैं। तुलना के लिये दोनों काव्यकृतियों के अयोध्याकांड से दो उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

रामायण— तमवाक् शिरसंभूमिं चरणाग्रेण राघवम् ।
विलिखंतमुवाचार्तम् वशिष्ठो भगवानृषिः ।
-ख, २।८०।१५ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— महि नख लिखन लगीं सब सोचन ।
-२।२८१।६ब

अरण्यकांड

[४०]

तुलसीदास अरण्यकांड का प्रारम्भ इस कथन से करते हैं कि मैं भरत और अयोध्यावासियों के द्वारा प्रदर्शित स्नेह का वर्णन करने के उपरान्त राम द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन करूँगा। निश्चय ही तुलसीदास ने यहाँ रामायण के 'ख' संस्करण के अरण्यकांड के १०५वें सर्ग को संदर्भित किया है। उपर्युक्त सर्ग में वाल्मीकि ने पहले चित्रकूट में गुहावास करते हुए राम और सीता के आमोद-प्रमोद का, तदुपरान्त काक-प्रसंग का वर्णन किया है। तुलसीदास ने इन दोनों वर्णनों को एक में जोड़कर संक्षिप्त कर दिया है। उन्होंने पहले प्रसंग को केवल एक चौपाई में और दूसरे को कुछ आगे चलकर किंचित् परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है। पहले भाग को निम्नांकित चौपाई में देखा जा सकता है—

रामचरितमानस— दण्ड[15] चारि महँ भा सब पारा।

—२।२०२।९

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेस प्रयाग।

—२।२०३।दोहा

[३६]

तुलसीदास कहते हैं कि राम ने भरत के साथ आये हुए पुरवासियों को अत्यन्त दुःखी देखकर सान्त्वना दी और गले से लगाया। तुलसीदास ने अपने पाठकों को पुनः यह भी अवगत कराया है कि सर्वशक्तिमान् भगवान का इतने अधिक लोगों से क्षण भर में मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है (रामचरितमानस,२, २४४,१-४)। तुलसीदास की अपनी विशिष्ट काव्यशैली से प्रभावित होने के बावजूद इस वर्णन पर रामायण की निम्नांकित पंक्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है—

तान्नरान् वाष्पपूर्णाक्षान् समीक्ष्यच सुदुःखितान्।
पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ॥

--ख, २।१११।५१ (ग, २।१०३।४७)

[३७]

राम को; दशरथ-मरण की सूचना जिन शब्दों में मिलती है उन्हें तुलसीदास ने 'कुलिस कठोर···कटु बानी' की संज्ञा दी है। वाल्मीकि ने भी इस अवसर पर 'वाग्वज्रम्' शब्द का प्रयोग किया है। दोनों कवियों में मात्र इतना अन्तर है कि वाल्मीकि ने वर्णन को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार दे दिया है—

तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा।
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं निशम्य तु ॥
प्रगृह्य बाहू रामोऽथ पुष्पिताग्रो द्रुमो यथा।
वने परशुना कृत्तस्तथा भूमौपपातसः ॥

--ख, २।१११।९ १०(ग, २।१०३।२-३)

[३८]

भरत किसी विचारणा से पूर्व राम की चरणपादुका से परामर्श करते हैं :—

१५—एक मुहूर्त में लगभग ४८ मिनट होते हैं। मुहूर्त के आधे को दण्ड कहते हैं जो लगभग २४ मिनट का होता है।

रामायण—　　ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यऽऽर्यपादुके ।
सबाल व्यजनं तत्र धारयामास च स्वयम् ।।
पादुके त्वभिषिच्यऽऽथ नन्दिग्रामे पुरोत्तमे ।
भरतः शासनं सर्वं पादुकाभ्यां निवेदयत् ।।
-ख, २।१२७।१६-१७ (ग २।११५।२३-२४)

रामचरितमानस—　　नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि-माँगि आयसु करत राजकाज बहुभाँति ।।
२।३२५।६-१०

[३९

शोक की व्यंजना के लिये गोस्वामी तुलसीदास ने एकाधिक स्थलों पर अंगूठे से धरती कुरेदने का वर्णन किया है। ऐसे वर्णन रामायण में भी प्राप्त होते हैं । तुलना के लिये दोनों काव्यकृतियों के अयोध्याकांड से दो उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

रामायण—　　तमवाक् शिरसंभूमिं चरणाग्रेण राघवम् ।
विलिखंतमुवाचार्तम् वशिष्ठो भगवानृषिः ।
—ख, २।८०।१५ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस—　　महि नख लिखन लगीं सब सोचन ।
—२।२८१।६ब

अरण्यकांड

[४०]

तुलसीदास अरण्यकांड का प्रारम्भ इस कथन से करते हैं कि मैं भरत और अयोध्यावासियों के द्वारा प्रदर्शित स्नेह का वर्णन करने के उपरान्त राम द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन करूँगा । निश्चय ही तुलसीदास ने यहाँ रामायण के 'ख' संस्करण के अरण्यकांड के १०५वें सर्ग को संदर्भित किया है । उपर्युक्त सर्ग में वाल्मीकि ने पहले चित्रकूट में गुहावास करते हुए राम और सीता के आमोद-प्रमोद का, तदुपरान्त काक-प्रसंग का वर्णन किया है । तुलसीदास ने इन दोनों वर्णनों को एक में जोड़कर संक्षिप्त कर दिया है । उन्होंने पहले प्रसंग को केवल एक चौपाई में और दूसरे को कुछ आगे चलकर किंचित् परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है । पहले भाग को निम्नांकित चौपाई में देखा जा सकता है—

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हतानां राम रक्षोभिर्बाहूनां बहुधा बने ॥
--ख, ३।१०।१७-१८ (ग, ३।६।१६)

वाल्मीकि के इस संकेत को पकड़कर तुलसीदास ने उसे मूर्तरूप देने के लिए राम को जंगल में अस्थियों का ढेर दिखाया है और राम के द्वारा उनके सम्बन्ध में ऋषियों से पूछताछ करवायी है—

अस्थि समूह देखि रघुराया ।
पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
—रामचरितमानस, ३।११।६

[४२]

अगस्त्य ने राम को मुनियों की रक्षा के लिए पंचवटी में कुटी बनाने की सलाह दी—

रामायण— अविचाऽत्र वसन् राम तापसान् पालयिष्यसि ।
—ख, ३।१६।२१ब = ग, ३।१३।२०ब

रामचरितमानस— बास करहु तहँ रघुकुल राया ।
कीजिय सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
—३।१५।१७

[४३]

शूर्पणखा सुन्दर रूप धारण कर राम के सम्मुख उपस्थित हुई और मुस्करा कर राम से कहने लगी—

रामायण— साऽभिगम्य महाबाहुं भूत्वा वै काम रूपिणी ।
स्त्री स्वभावं पुरस्कृत्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥
—ख, ३।२३।२५ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई ।
बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
—३।१९।७

यहाँ तुलसीदास ने जिस प्रकार रामायण की पंक्तियों को शब्दशः रूपान्तरित किया है वह ध्यातव्य है ।

[४४]

रामचरितमानस के अनुसार शूर्पणखा के आत्मसमर्पण पर राम ने पहले सीता की ओर देखा और तत्पश्चात् उसे लक्ष्मण से प्रणय-याचना करने की सलाह दी। उन्होंने लक्ष्मण के अविवाहित होने की बात भी कही। यद्यपि राम के द्वारा सीता की ओर देखने की क्रिया को रामायण (द्रष्टव्य बैजनाथ कृत टीका) से संदर्भित किये बिना भी कई प्रकार से व्याख्यापित किया जा सकता है तो भी इसमें सन्देह नहीं है कि तुलसीदास ने इस वर्णन को रामायण से ग्रहण किया है—

रामायण— एतत्तु वचनं श्रुत्वा राक्षस्याह्यतिदारुणम् ।
ईक्षां चक्रे तदा सीतां लक्ष्मणं च महाभुजः ॥
—ख, ३।२३।४५ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— सीतहि चितइ कही प्रभु बाता ।
—३।१६।११अ

[४५]

रामायण के अनुसार शूर्पणखा को विरूप करने के प्रतिशोध स्वरूप राक्षसों ने दो बार आक्रमण किये। प्रथम आक्रमण में चौदह व्यक्ति थे और दूसरे में चौदह हजार। तुलसीदास ने दोनों आक्रमणों को परस्पर मिलाकर चौदह हजार व्यक्तियों के एक ही आक्रमण का वर्णन किया है। राक्षसों की विशाल सेना को निकट आते देखकर राम ने अपने अनुज लक्ष्मण से सीता को कन्दरा में सुरक्षित स्थान पर ले जाने के लिये कहा। लक्ष्मण ने धनुष-बाण धारणकर राम के आदेशानुसार सीता सहित तत्काल प्रस्थान कर दिया—

रामायण— एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया ।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गामपाश्रयत् ॥
—ख, ३।३०।१६ (ग, ३।२४।१५)

रामचरितमानस— रहेउ सजग सुनि प्रभु कै बानी ।
चले सहित श्री सर धनु पानी ॥
—३।२०।१२

इसके अनन्तर राम शस्त्रास्त्र धारण करते हैं। वाल्मीकि के अनुसार कवच धारण करने पर राम, अंधकार को विनष्ट कर उगते हुये सूर्य की भाँति चमक रहे थे। तुलसीदास के हृदय में भी बाल रवि का बिम्ब था

किन्तु वे इस बात को स्पष्ट नहीं करते कि आखिर राम को उदित होते हुए सूर्य से क्यों उपमित किया गया—

रामायण— स तेनाग्नि काशेण कवचेन विभूषितः ।
रराज रामस्तिमिरं विधूयार्कइवोदितः ।,
—ख, ३।३०।१८ (ग, ३।२४।१७)

रामचरितमानस— .... बाल रबिहिं घेरत दनुज ।
—३।२०।१९

राम के तेज को देखकर राक्षस स्तंभित रह जाते हैं —

रामायण— दृष्ट्वा तु राघवं सर्वे राक्षसा युद्ध दुर्मदाः ।
स्थिताः पर्वत संकाशाः परमं विस्मयं गतः ।।
—ख ३।३०।३८ ('ग' संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी ।
थकित भई रजनीचर धारी ।।
—३।२१।१

चौदह हजार राक्षस राम के ऊपर हर प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करते हैं—

रामायण— ततस्तं भीमकर्मानाम् क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः ।
अस्त्रैर्नानाविधाकारैरभ्यवर्षन् सुदुर्जयम् ।।
—ख, ३।३१।६ (ग, ३।२५।७)

रामचरितमानस— सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति ।
लागे बरसन राम पर, अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ।।
—३।२१।१९–२०

[४६]

तुलसीदास आगे लिखते हैं कि राम के बाण से आहत होकर राक्षस पर्वत की भाँति धराशायी हो जाते हैं। राक्षसों के विकटाकार शरीर को पर्वत से उपमित करना चाहे जितना स्वाभाविक हो, और रामायण तथा रामचरित मानस के इस प्रसंग में चाहे जितना सामंजस्य हो किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि रामचरितमानस की प्रस्तुत पंक्तियों में इसका कोई औचित्य नहीं है। यह तुलना रामायण के तत्संवादी अंश को, जहाँ से यह निश्चित रूप से गृहीत है, संदर्भित तो करती है किन्तु इसमें स्पष्टता का अभाव है—

रामायण— केचिद्वाणप्रवेगैस्तु निर्भिन्न कवचारणे ।
उच्चैर्गगनमाक्षिख्य ततो गच्छन् रसातलम्॥
महाद्रिशिखराकारानञ्जनाचल सन्निभान् ।
खेचरान् पातयामास राक्षसान् धरणीतले ॥
—ख, ३।३१।२५, २६ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— चिक्करत लागत बान, धर परत कुधर समान ।
—३।२२।१०

[४७]

राक्षसों के साथ युद्ध का वर्णन करने से पहले वाल्मीकि कहते हैं कि राम को अकेले चौदह हजार शत्रुओं का सामना करते हुए देखकर देवगण भयभीत हो उठे। तुलसीदास ने प्रस्तुत विवरण को इस रूप में ग्रहण अवश्य किया किन्तु उसे यथोचित स्थान नहीं दिया। वे इसे उस समय प्रस्तुत करते हैं जब राम राक्षसों का संहार प्रायः कर चुके होते हैं—

रामायण— ततो देवर्षि गंधर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।
ऊचुः परमसंत्रस्ता गुह्यकैश्च परस्परं ॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसां भीम कर्मणाम् ।
एकाश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥
—ख, ३।३०।२०-२१ (ग, ३।२४।२३-२४)

रामचरितमानस— सुर डरत चौदह सहस्र प्रेत,
बिलोकि ऐक अवध-धनो ।
—३।२२।२७

[४८]

वाल्मीकि के अनुसार राक्षस, राम के द्वारा गांधर्वास्त्र के प्रचंड प्रक्षेपण से, इस प्रकार विक्षिप्त हो गये कि उन्हें अपने ही साथियों में राम की प्रतिच्छाया दिखाई पड़ने लगी। इस प्रकार उन्होंने एक दूसरे को मारकर अपना ही विनाश कर डाला। तुलसीदास ने वाल्मीकि के इस वर्णन को ठीक इसी रूप में ग्रहण किया है—

रामायण— ततास्ते राक्षसास्तत्र गान्धर्वास्त्रेण मोहिताः ।
अयं रामस्त्वयं राम इति कालेन चोदितैः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुरुत्पत्य परमायुधैः ॥
—ख, ३।३१।४६ब-४७ (ग, संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस—

मायानाथ अति कौतुक करेउ ।
देखहिं परस्पर राम करि,
संग्राम रिपु दल लरि मरेउ ।
राम राम कहि तनु तजहिं,
पावहिं पद निरबान ।

—३।२२।२८-३०

रामचरितमानस की उपर्युक्त पंक्तियों में राक्षसों के 'राम ! राम !' कहते हुए शरीर त्यागने की बात कही गयी है। यदि कोई मानस के हिन्दी पाठ पर ही ध्यान दे तो उसे राक्षसों के 'राम ! राम !' कहकर चिल्लाने के उचित कारण का पता नहीं चल सकेगा। इसका निर्णय करने के लिये रामायण की समानान्तर पंक्तियों पर ध्यान देना होगा, जिनमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राक्षसों ने अपने ही साथियों में राम को देखा और एक दूसरे पर 'अयं रामः ! अयं रामः !' (यह राम है ! यह राम है !) कहते हुए टूट पड़े। वस्तुतः मानस का यह स्थल रामायण से सन्दर्भित किए बिना स्पष्ट नहीं हो पाता है। इसीलिये ग्राउज़ महोदय को भी रामचरितमानस का अनुवाद करते हुए इसे समझने में भ्रम हो गया था और उन्होंने लिखा था—मायापति होने के कारण भगवान ने एक कौतुक किया, और जब राक्षस एक 'दूसरे की ओर देखने लगे तब भगवान राम ने युद्ध समाप्त कर दिया, और शत्रु-सेना का संहार हो गया। प्राणान्त के समय 'राम राम' की ध्वनि करने के कारण उन्हें परमगति की प्राप्ति हुई।'

[४९]

सीता का हरण करने के लिए रावण मारीचि का सहयोग चाहता है, किन्तु मारीचि उसे राम जैसे महान् योद्धा को उत्तेजित करने से रोकते हुए कहता है कि मैंने युद्ध में उनकी शक्ति का पता लगा लिया है। मैं उनके केवल एक बाण के आघात से सौ योजन की दूरी पर जा गिरा था। मारीचि ने कहा कि तबसे मैं जिधर देखता हूँ उधर ही भयानक शत्रु राम के उपस्थित होने का भय बना रहता है—

रामायण—

अपि राम सहस्राणि भीतः पश्यामि रावण ।
रामं भूतमिदं सर्वं अरण्यं प्रतिभाति मे ।।
वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
शरचापधरं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ।।

रामभेवानुपश्यामि रहितेष्वाकुलेषु च ।
दृष्ट्वा स्वप्नगतो रामं उद्भ्रमामि विचेतनः ।।
—ख, ३।४३।३२-३४ (ग, ३।३९।१५-१७)

रामचरितमानस— भइ मम कीट भृङ्ग की नाईं ।
जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई ।।
—३।२७।७

[५०]

रामायण में जब मारीचि राम के भय से रावण की मदद करने से इनकार करता है तब वह उसे यह कहकर धमकाता है कि राम के पास जाने पर तुम्हें मृत्यु का केवल भय है किन्तु मेरी अवज्ञा करने पर तुम्हारी मृत्यु निश्चित है; अतः तुम जिसे चाहो चुन लो—

आसाद्य तं जीवित संशयोवा,
मृत्युर्ध्रुवास्तेऽद्य मया विरुद्धया।
एवं यथावद् बिगरणय्य बुद्धया,
यद्रोचते तत्कुरु यच्चपथ्यम् ।।
—ख, ३।४४।३१ (ग, ३।४०।२७)

जब मारीचि, दोनों प्रकार से अपनी मृत्यु जानकर, रावण के आज्ञा-पालन का निश्चय करता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि इन पंक्तियों की रचना करते समय तुलसीदास के मस्तिष्क में रामायण की उपर्युक्त पंक्तियाँ रही होंगी—

उभय भाँति देखा निज मरना।
तब ताकेसि रघुनायक सरना ।।
—३।२८।५

[५१]

राम के आश्रम में कंचन-मृग का दिखाई पड़ना, सीता के हृदय में उसके चर्म के प्रति चाह उत्पन्न होना, राम के द्वारा उसका पीछा किया जाना, मृग का भागना, मरना तथा मरते समय 'लक्ष्मण ! लक्ष्मण !' कहकर पुकारना रामायण और रामचरितमानस दोनों में सर्वथा एक समान है। इस प्रसंग में तुलसीदास, वाल्मीकि के वर्णन पर कितने आश्रित हैं, इसके उदाहरण के रूप में हम कुछ समानान्तर पंक्तियाँ उद्धृत करेंगे जिनमें राम को लोभवश दूर ले जाने के उद्देश्य से, कभी मृग के निकट आने, कभी दूर हो जाने, कभी दिखाई पड़ने तथा कभी अदृश्य हो जाने का वर्णन किया गया है—

रामायण— स च राम भयोद्विग्नो मारीचो दण्डके बने ।।
बभूवांतर्हितस्तत्र क्षणात्पुनरदृश्यत् ।
एषोऽयं अयमेतीति वेगवान राघवो ययौ ।।
मुहूर्तादिव ददृशे मुहूर्तान्न प्रकाशते ।
अतिवृत्ता ईषत्त्रासाऽऽल्लोभयन स रघूत्तमम् ।।
क्वचिद्दृष्टः क्वचिन्नष्टः क्वचित्त्रासाच्च विद्रुतः ।
—ख, ३।५०।४-७अ

रामचरितमानस— कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई ।
कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई ।।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी ।
एहि बिधि प्रभुहि गयउ लइ दूरी ।।
—३।२६।१२-१३

[५२]

वसन्त ऋतु में पम्पा बन के सौन्दर्य तथा सीता से वियुक्त राम के मन पर उसके प्रभावांकन में (३।४०-४१) तुलसीदास ने रामायण (ख, ३।७६ और ग, ४।१) से प्रभाव ग्रहण किया है । वाल्मीकि ने भी इस अवसर पर बन में वसन्त की शोभा का वर्णन किया है जो स्वयं तो प्रेम से परिपूर्ण है ही, दूसरों में भी प्रेमोद्रेक करती है। इस दृश्य को देखकर राम का मन अत्याधिक शोकाकुल हो उठता है--

वसन्तकालः प्राप्तोऽयं नानाविहग कूजितः ।
विशालाक्षि विहीनस्य मम शोक विवर्धनः ।
सौमित्रे मां सुदुःखार्त्तं सन्तापयति मन्मथः ।।
—३।७८।८-१०अ (ग,४।१।२२-२३अ)

तुलसीदास ने इस संकेत को वाल्मीकि से ग्रहणकर, उसमें कामदेव द्वारा वियोगी राम को संतप्त करने तथा उनके विरुद्ध सेना लगाने की बात जोड़कर, प्रसंग को विकसित कर दिया है । इस प्रकार कवि ने बसन्त को मूर्तरूप देकर उसका विशद वर्णन करने का अवसर निकाल लिया है (रामचरितमानस ३।४१) ।

[५३]

तुलसीदास के अनुसार पम्पा सरिता नहीं अपितु सर है । उन्होंने इसके पवित्र जल का माहात्म्य वर्णित किया है। कहना न होगा, तुलसी का वर्णन वाल्मीकि के वर्णन से बहुत प्रभावित है, जिसमें आदि कवि ने पम्पा को 'शुभजला', 'रम्यवारि वहा', 'शीतजला' आदि की संज्ञा दी है ।

किष्किंधाकांड

[५४]

राम सुग्रीव के द्वारा प्राप्त सीता के उत्तरीय को हृदय से लगाते हैं–

रामायण— हृदि कृत्वा तु बहुशस्तमलंकारमार्त्तवत् ।
विनिश्वसंश्च बहुशो भुजंगेव रोषितः ।
—ख, ४।५।१६(ग,४।६।१८)

रामचरितमानस— पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ।
—४।६।६ब

[५५]

रामचरितमानस में बालि ने राम की इस बात के लिये भर्त्सना की है कि उन्होंने शिकारी की भाँति धोखे से उसे मारा—

मारेहु मोहि ब्याध की नाईं ।
—४।१०।५ब

तुलसीदास को यह उपमा रामायण की निम्नलिखित पंक्तियों से सूझी होगी, जिसमें राम ने अपना पक्ष स्पष्ट करते हुए बालि से कहा है कि तुम बन्दर हो इसलिये शिकारी की भाँति तुम्हें मारना उचित है—

वागुभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ।
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च निघ्नन्त्यस्म बहून्मृगान् ।।
प्रधावितान् अविश्वस्तान् विश्वस्तानऽपि अविद्रुतान् ।
प्रसुप्तानप्रसुप्तांश्च घ्नन्तिमां सारथिनो मृगान् ।।
यान्ति राजर्षयाश्चाऽत्र मृगयां धर्म कोविदाः ।
लिप्यन्ते न च दोषेण निघ्नन्तोऽपि मृगान्बहून् ।।
तस्मात्वंनिहतो युद्धे मया बाणेन वानर ।
अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वा सौम्य शाखामृगोह्यसि ।।
—ख, ४।१७।१६-१९(ग,४।१८।३७ब–४०)

[५६]

बालि को मारने के पश्चात् राम किष्किंधा में प्रवेश करने से इनकार कर देते हैं, क्योंकि उन्होंने चौदह वर्ष तक किसी नगर अथवा गाँव में प्रवेश न करने की प्रतिज्ञा की थी। तब उन्होंने सुग्रीव को, नगर में

जाकर, अंगद को युवराज बनाने का आदेश दिया। स्वयं अपने लिये उन्होंने, निकट ही पर्वत पर कुटी बनाकर निवास करते हुए, वर्षा ऋतु व्यतीत करने का निश्चय किया—

रामायण—

चतुर्दशसमाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमान पितुरादेश एष मे ॥
एवमुक्त्वा हनुमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ।
एवमप्यङ्गदं राजन् यौवराज्येऽभिषेचय ॥
प्रथमो वार्षिकोमासः श्रावण सलिलाप्लुतः ।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासश्चवार्षिकैमे ॥
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीमिमाम् ।
इह वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते नियतेन्द्रियः ॥
—ख,४।२५।६ और अनु० (ग,४।२६।१० और अनु०)

रामचरितमानस—

कह प्रभु सुनु सुग्रीवँ हरीसा ।
पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीषम वरषा रितु आई ।
रहिहउँ निकट सैल पर छाई ॥
अङ्गद सहित करहु तुम्ह राजू ।
—४।१३।७-६

[५७]

इसके अनन्तर रामायण (ख, ४, २७; ग, ४, २८) तथा रामचरित-मानस (४, १४-१६) दोनों ग्रन्थों में वर्षा ऋतु का वर्णन हुआ है। इस अवसर पर वाल्मीकि को प्रकृति के दृश्यों से कतिपय बहुत सुन्दर उपमाओं की प्राप्ति हुई है, जिनका प्रयोग उन्होंने पात्रों के वर्णन में किया है। तुलसीदास के वर्षा-वर्णन में भी यही बात दिखाई पड़ती है, किन्तु उनकी उपमा नीति और धर्मपरक है। उदाहरणार्थ घन में चमकती हुई दामिनि में वाल्मीकि को रावण द्वारा अपहृत सीता के दर्शन होते हैं जबकि तुलसीदास को वह खल की अस्थिर प्रीति सी प्रतीत होती है। इसके पश्चात् शरद् ऋतु का वर्णन किया गया है (ख,४।२६;ग,४,३०; राम चरितमानस, ४,१७-१८)।

[५८]

रामचरितमानस (४, २५, १) में हम देखते हैं कि सीता की खोज

में भेजे हुए बन्दर जहाँ भी किसी राक्षस को पाते हैं उसे एक ही मुष्टिक-प्रहार से मार डालते हैं—

कतहुँ होइ निसचर सों भेंटा ।
प्रान लेहिं एक-एक चपेटा ॥

इसमें संदेह नहीं कि तुलसीदास ने रामायण के उसी तथ्य को सामान्यीकृत किया है जिसमें अंगद ने एक राक्षस को पर्वतगुहा में थप्पड़ के प्रहार से (तलेनाभिजघान) [ख, ४, ४८, २१ (ग, ४, ४८, २०)] मार डाला था। रामायण में सीता की खोज में निकले हुए बंदरों की किसी दूसरे राक्षस से भेंट होने का उल्लेख नहीं है।

[५९]

सीता का पता लगाने में असफल होने पर अंगद ने यह कहते हुए लौटने से इनकार कर दिया कि यदि मैं निर्धारित शर्त का उल्लंघन कर सीता का पता लगाए बिना घर लौटा तो सुग्रीव मुझे निश्चय ही मार डालेगा क्योंकि वह बहुत दिनों तक मेरा शत्रु रहा है। इस समय मेरे इस अपराध से वह प्रसन्न होगा और प्रतिशोध की भावना से युक्त होकर अवसर का लाभ उठाएगा। अंगद ने यह भी कहा कि मुझे युवराज, राम ने बनाया है, सुग्रीव ने नहीं। तुलसीदास ने मानस में ठीक इन्हीं भावों की व्यंजना की है; अन्तर केवल इतना है कि तुलसीदास का वर्णन रामायण की अपेक्षा संक्षिप्त है—

रामायण—

न चाहं यौवराज्ये वै सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽहं रामेण विदितात्मना ॥
स पूर्वबद्धवैरो मां दृष्ट्वा राजा व्यतिक्रमम् ।
घातयिष्यति तीक्ष्णेन दण्डेनातिचिराद्गतम् ॥
—ख ४।५३।१३-१४ (ग, ४।५३।१७ब-१८ब)

रामचरितमानस—

उहाँ गए मारिहि कपिराई ॥
पिता बधे पर मारत मोही ।
राखा राम निहोर न ओही ॥
—४।२७।४-५

[६०]

अंगद के मुख से यह सुनकर, कि अब मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है, कपि-समूह अश्रुपात करने लगा—

रामायण— तस्य श्रुत्वा वचस्तत्र करुणं वानरर्षभाः ।
नयनेभ्यस्तु ससृजुर्नेत्रजं वारि दुःखिताः ।।
—ख ४।५५।१७ (ग, ४।५५।१७ब-१८अ)

रामचरितमानस— अङ्गद-बचन सुनत कपि बीरा ।
बोलि न सकहिं नयन बह नीरा ।।
—४।२७।७

[६१]

संपाती को देख, उसके जीवन का अंत समझकर, अंगद को, राम की सेवा में जीवन की आहुति देकर स्वर्ग प्राप्त करने वाले जटायु की याद आ गयी—

रामायण— सुखितो गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे ।।
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च गतिमुत्तमम् ।
—ख, ४।५६।१२-१३ (ग,४।५६।१३)
धन्यः स गृध्राधिपतिर्जटायुः ... ... ।
—ख, ४।५६।१८ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— कह अङ्गद बिचारि मन माहीं ।
धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।।
राम-काज कारन तनु त्यागी ।
हरि-पुर गयउ परम बड़ भागी ।।
—४।२८।७-८

[६२]

संपाती ने बंदरों से कहा, "धैर्य धारण करो। मुनिवर निशाकर की भविष्यवाणी सत्य होगी और तुम लोग सीता को पाने में सफल होगे। मेरे पंखों का पुनः सँवर जाना इस भविष्यवाणी की सत्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है"—

रामायण— सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ।
पक्षलाभो ममायं वः प्रत्यक्षं संनिदर्शितः ।।
—ख, ४।६३।१५ (ग, ४।६३।१२ब-१३अ)

रामचरितमानस— मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा ।
राम कृपा कस भयउ सरीरा ।।
—४।३०।२

में भेजे हुए बन्दर जहाँ भी किसी राक्षस को पाते हैं उसे एक ही मुष्टिक-प्रहार से मार डालते हैं—

कतहुँ होइ निसचर सों भेंटा ।
प्रान लेंहि एक-एक चपेटा ॥

इसमें संदेह नहीं कि तुलसीदास ने रामायण के उसी तथ्य को सामान्यीकृत किया है जिसमें अंगद ने एक राक्षस को पर्वतगुहा में थप्पड़ के प्रहार से (तलेनाभिजघान) [ख, ४, ४८, २१ (ग, ४, ४८, २०)] मार डाला था। रामायण में सीता की खोज में निकले हुए बंदरों की किसी दूसरे राक्षस से भेंट होने का उल्लेख नहीं है।

[५९]

सीता का पता लगाने में असफल होने पर अंगद ने यह कहते हुए लौटने से इनकार कर दिया कि यदि मैं निर्धारित शर्त का उल्लंघन कर सीता का पता लगाए बिना घर लौटा तो सुग्रीव मुझे निश्चय ही मार डालेगा क्योंकि वह बहुत दिनों तक मेरा शत्रु रहा है। इस समय मेरे इस अपराध से वह प्रसन्न होगा और प्रतिशोध की भावना से युक्त होकर अवसर का लाभ उठाएगा। अंगद ने यह भी कहा कि मुझे युवराज, राम ने बनाया है, सुग्रीव ने नहीं। तुलसीदास ने मानस में ठीक इन्हीं भावों की व्यंजना की है; अन्तर केवल इतना है कि तुलसीदास का वर्णन रामायण की अपेक्षा संक्षिप्त है—

रामायण—

न चाहं यौवराज्ये वै सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽहं रामेण विदितात्मना ॥
स पूर्वबद्धवैरो मां दृष्ट्वा राजा व्यतिक्रमम् ।
घातयिष्यति तीक्ष्णेन दण्डेनातिचिराद्गतम् ॥

—ख ४।५३।१३-१४(ग, ४।५३।१७ब-१८ब)

रामचरितमानस—

उहाँ गए मारिहि कपिराई ॥
पिता बधे पर मारत मोही ।
राखा राम निहोर न ओही ॥

—४।२७।४-५

[६०]

अंगद के मुख मे यह सुनकर, कि अब मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है, कपि-समूह अश्रुपात करने लगा—

रामायण— तस्य श्रुत्वा वचस्तत्र करुणं वानरर्षभाः ।
नयनेभ्यस्तु ससृजुर्नेत्रजं वारि दुखिताः ।।
—ख ४।५५।१७ (ग, ४।५५।१७ब-१८अ)

रामचरितमानस— अङ्गद-बचन सुनत कपि बीरा ।
बोलि न सकहिं नयन बह नीरा ।।
—४।२७।७

[६१]

संपाती को देख, उसके जीवन का अंत समझकर, अंगद को, राम की सेवा में जीवन की आहुति देकर स्वर्ग प्राप्त करने वाले जटायु की याद आ गयी—

रामायण— सुखितो गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे ।।
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च गतिमुत्तमम् ।
—ख, ४।५६।१२-१३ (ग,४।५६।१३)
धन्यः स गृध्राधिपतिर्जटायुः ... ... ।
—ख, ४।५६।१८ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— कह अङ्गद बिचारि मन माहीं ।
धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।।
राम-काज कारन तनु त्यागी ।
हरि-पुर गयउ परम बड़ भागी ।।
—४।२८।७-८

[६२]

संपाती ने बंदरों से कहा, "धैर्य धारण करो। मुनिवर निशाकर की भविष्यवाणी सत्य होगी और तुम लोग सीता को पाने में सफल होगे। मेरे पंखों का पुनः सँवर जाना इस भविष्यवाणी की सत्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है"—

रामायण— सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ।
पक्षलाभो ममायं वः प्रत्यक्षं संनिदर्शितः ।।
—ख, ४।६३।१५ (ग, ४।६३।१२ब-१३अ)

रामचरितमानस— मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा ।
राम कृपा कस भयउ सरीरा ।।
—४।३०।२

[६३]

सीता की खोज में निकले हुए बंदरों द्वारा सिन्धु को पार करने के प्रयत्नों को तुलसीदास ने निष्ठापूर्वक यथापूर्व संक्षेप में प्रस्तुत किया है (ख. ५, १; ग, ४, ६४-६५)। जामवंत ने वृद्धावस्था के कारण खेद प्रकट किया और अपनी युवावस्था की उपलब्धियों की चर्चा की। अंगद ने सौ योजन तक कूदने का विश्वास प्रकट किया किन्तु लौटने में उन्हें संदेह था। जामवंत ने इस बात का उत्तर देते हुए कहा कि यह सच है कि अंगद इस साहसिक कार्य को करने में समर्थ हैं किन्तु यह शोभनीय नहीं है कि स्वयं मुखिया ही हम लोगों के बीच उपस्थित न रहे। इसके बाद हनुमान से कहा कि पवन के पुत्र होकर, शक्ति में पिता के समान होते हुए भी, आप चुपकी साधे अलग क्यों बैठे हैं ? आपको स्वयं उठकर इस दुरूह कार्य को सम्पन्न करने के लिये आगे आना चाहिए।

रामायण—

तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि ।
हनुमन् हरिराजस्य सुग्रीवस्य समोह्यसि ।
... ... ॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः ।
त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः ॥

—ग, ४।६६।२ब और अनु०(ख, ५।२।२ब)

रामचरितमानस—

कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना ।
का चुप साधि रहेउ बलवाना ।
पवन तनय बल पवन समाना ।

—४।३१।३-४

सुंदरकांड

[६४]

हनुमान ने मन ही मन विचार किया कि राक्षसों से भली-भांति रक्षित नगर में, अपने वास्तविक रूप में, प्रवेश कर पाना संभव नहीं है। अतः मुझे रात में अत्यन्त लघु रूप धारण कर प्रवेश करना होगा—

रामायण—

अनेन रूपेण मया न शक्या राक्षसां पुरी ।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लंकापुरीमया ।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ।।
—ग, ५।२।३१ और अनु० (ख, ५।८।३१ब और अनु०)

रामचरितमानस— पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार ।
अति लघु रूप धरउँ निसि नगर करउँ पइसार ।।
—५।३।२४-२५

तुलसीदास के अनुसार हनुमान ने मशक रूप धारण किया था। इससे रामायण की समानान्तर पंक्तियों में वाल्मीकि के 'वृषदंशिक' शब्द से 'मशक' का अर्थ लेने वालों को अपने समर्थन में एक तर्क और मिल जाता है। यह मत रामवर्मन के उस मत से भिन्न है जिसके अनुसार उन्होंने 'वृषदंशिक' का अर्थ 'मार्जार' किया है ।

[६५]

जब हनुमान ने सीता से कहा कि मैं राम का दूत हूँ तब सीता को नर-वानर की मैत्री पर आश्चर्य हुआ—

रामायण— वानराणां नराणां च कथमासीत् समागमः ।
—ग, ५।३५।२ब (ख, ५।३२।२ब)

रामचरितमानस— नर बानरहिं संग कहु कैसे ।
—५।१७।११अ

[६६]

दूत होने के कारण हनुमान की अवध्यता को दृष्टि में रखते हुए रावण ने उनकी पूँछ में, जिस पर बंदरों को गर्व होता है, आग लगाने का दंड दिया—

रामायण— कपीनां किल लांगूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
—ग, ५।५३।३अ (ख, ५।४९।३अ)

रामचरितमानस— कपि कै ममता पूँछि पर···· ····
—५।२४।१०अ

[६७]

हनुमान के द्वारा लंकादहन से आतंकित होकर लंकानिवासी चिल्लाते और एक दूसरे को पुकारते हैं—

रामायण— हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा-
जीवितेसाङ्ग हतं सुपुण्यम् ।

रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवाद्भिः-
शब्दः कृतो घोरतरः सुभीतः ॥
—ग, ५।५४।४० (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— तात मातु हा सुनिय पुकारा ।
—५।२६।३अ

और कहते हैं कि यह बन्दर नहीं वरन् बन्दर के वेश में कोई देवता है--

रामायण-- वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा,
साक्षाद् यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रौद्रोऽग्निरर्कोधनदश्चसोमो,
न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥
किं ब्राह्मणः सर्व पितामहस्य,
लोकस्य धातुश्चतुराननस्य ।
इहागतो वानर रूप धारी,
रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥
किं वैष्णवं वा ... ... आदि ।
—ग, ५।५४।३५-३६ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस-- हम जो कहा यह कपि नहिं होई ।
बानर रूप धरे[17] सुर कोई ॥
—५।२६।४

लंका में आग लगाकर हनुमान अपनी जलती हुई पूँछ को बुझाने के लिए समुद्र में कूद पड़े--

रामायण— लङ्कां समस्तां संपीड्य लांगूलाग्नि महाकपिः ।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुंगवः ॥
—ग, ५४।४६ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस-- उलटि पलटि लंका सब जारी ।
कूदि परा पुनि सिन्धु मंझारी ॥
पूंछि बुझाइ ... ... ।
--५।२६।८-६

---

१७. यहाँ 'बानर रूप धरे' और 'बानररूपधारी' का सादृश्य ध्यातव्य है ।

उपर्युक्त समस्त विवरण रामायण के 'ख' संस्करण में नहीं हैं। इसमें ग, ५, ५४, ३१-५० के छंदों का अभाव है।

[६८]

सीता, राम को संदेश भेजती हैं कि आपके वियोग में मैं एक मास से अधिक जीवित नहीं रह सकती—

रामायण—

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥
ऊर्ध्वं मासान्नजीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते।
—ग, ५।३८।६४-६५अ (ख, ५।३६।६९)

रामचरितमानस—

मास दिवस महुँ नाथ न आवा।
तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा ॥
—५।२७।६

[६९]

सीता द्वारा भेजे हुए आभूषण को हनुमान से पाकर, राम ने उसे हृदय से लगा लिया और अश्रुपात करते हुए हनुमान से पूछा कि सीता ने मेरे लिए क्या संदेश भेजा है?

रामायण—

तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः।
तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीमिदमब्रवीत् ॥
....
किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः।
... — ... ... — — — ॥
किमाह सीता हनुमन् — — ... ... ॥
—ग, ५।६६।१ब और अनु० (ख, ५।६७।१ और अनु०)

रामचरितमानस—

रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्हो।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी ॥
बचन कहे कछु जनक कुमारी ॥
—५।३१।१ब-२

[७०]

हनुमान की महत्त्वपूर्ण सेवा का मूल्य चुकाने में अपने को असमर्थ समझ राम ने खेद प्रकट किया—

रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवाद्भिः-
शब्दः कृतो घोरतरः सुभीतः ॥
—ग, ५।५४।४० (ख संस्करण में नहीं हैं)

रामचरितमानस— तात मातु हा सुनिय पुकारा ।
—५।२६।३अ

और कहते हैं कि यह बन्दर नहीं वरन् बन्दर के वेश में कोई देवता है--

रामायण— वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा,
साक्षाद् यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रौद्रोऽग्निरर्कोधनदश्चसोमो,
न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥
किं ब्राह्मणः सर्व पितामहस्य,
लोकस्य धातुश्चतुराननस्य ।
इहागतो वानर रूप धारी,
रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥
किं वैष्णवं वा ... ... आदि ।
—ग, ५।५४।३५-३६ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस-- हम जो कहा यह कपि नहिं होई ।
बानर रूप धरे[17] सुर कोई ॥
—५।२६।४

लंका में आग लगाकर हनुमान अपनी जलती हुई पूँछ को बुझाने के लिए समुद्र में कूद पड़े--

रामायण— लङ्कां समस्तां संपीड्य लांगूलाग्निं महाकपिः ।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुंगवः ॥
—ग, ५४।४६ (ख संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस-- उलटि पलटि लंका सब जारी ।
कूदि परा पुनि सिन्धु मंझारी ॥
पूंछि बुझाइ ... ... ।
--५।२६।८-६

---

१७. यहाँ 'बानर रूप धरे' और 'बानररूपधारी' का सादृश्य ध्यातव्य है ।

उपर्युक्त समस्त विवरण रामायण के 'ख' संस्करण में नहीं हैं। इसमें ग, ५, ५४, ३१-५० के छंदों का अभाव है।

[६८]

सीता, राम को संदेश भेजती हैं कि आपके वियोग में मैं एक मास से अधिक जीवित नहीं रह सकती—

रामायण— इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥
ऊर्ध्वं मासान्नजीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते।
—ग, ५।३८।६४-६५अ (ख, ५।३६।६९)

रामचरितमानस— मास दिवस महुँ नाथ न आवा।
तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा ॥
—५।२७।६

[६९]

सीता द्वारा भेजे हुए आभूषण को हनुमान से पाकर, राम ने उसे हृदय से लगा लिया और अश्रुपात करते हुए हनुमान से पूछा कि सीता ने मेरे लिए क्या संदेश भेजा है?

रामायण— तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः।
तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥
....
किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः।
... — ... ... — — — ॥
किमाह सीता हनुमन् — — ... ... ॥
—ग, ५।६६।१ब और अनु० (ख, ५।६७।१ और अनु०)

रामचरितमानस— रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी ॥
बचन कहे कछु जनक कुमारी ॥
—५।३१।१ब-२

[७०]

हनुमान की महत्त्वपूर्ण सेवा का मूल्य चुकाने में अपने को असमर्थ पाकर राम ने खेद प्रकट किया—

रामायण— एकं तु मम दीनस्य मनोभूयः प्रकर्षति ।
यदस्याहं प्रियाख्याने न करोमि सदृक्प्रियम् ।।
एवं संचिन्त्य बहुधा राघवः प्रीतमानसः ।
निरीक्ष्य सुचिरं प्रीत्या हनूमन्तमवाच ह ।।
इत्युक्त्वा बाष्पपूर्णाक्षी राघव··· ··· ···
—ख, ५।७०।११ और अनु० (ग, ६।१।१२ और अनु०)

रामचरितमानस— प्रति उपकार करउँ का तोरा ।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता ।
लोचन नीर पुलक अति गाता ।।
—५।३२।६-८

रामायण के 'ग' संस्करण से मानस की उपर्युक्त पंक्तियों की तुलना अपेक्षाकृत कम उत्साहवर्द्धक है। वस्तुतः यह एक अपवादात्मक तथ्य है क्योंकि देखा यह गया है कि तुलसीदास ने एक साथ दो संस्करणों का अनुगमन कभी नहीं किया है।

[७१]

विभीषण राम से शरण-याचना करते हैं। सुग्रीव (रामायण के अनुसार) और अन्य लोग भी विभीषण को रावण का भेदिया बताते हुए राम से शरण न देने की बात कहते हैं। किन्तु राम यह उत्तर देते हैं कि शरणार्थी को मैं कभी भी तिरस्कृत नहीं कर सकता चाहे वह कितना ही बड़ा अपराधी क्यों न हो—

रामायण— मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतद्विगर्हितम् ।।
—ख, ५।६०।३६ (ग, ६।१८।३)

रामचरितमानस— कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू ।
आये सरन तजउँ नहिं ताहू ।।
—५।४४।१

उन्होंने शरणागत की रक्षा करने का व्रत लिया—

रामायण— सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।
—ग, ६।१८।३३ (ख, ५।६१।१४)

रामचरितमानस— मम पन सरनागत भय हारी ।
—५।४३।८

दूसरी ओर यदि यह भी मान लिया जाय कि राक्षस विभीषण को रावण ने शत्रुतापूर्ण उद्देश्यों से भेजा है, तो भी राम के लिये भय का कोई कारण नहीं है—

रामायण— स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्त्तुं मम शक्तः कथञ्चन ।।
पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।
अंगुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरि गणेश्वर ।।
—ग, ६।१८।२२-२३(ल, ५।९१।२-३)

रामचरितमानस— भेद लेन पठवा दससीसा ।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ।।
जग महुँ सखा निसाचर जेते ।
लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ।।
—५।४४।६-७

उद्धरण के अंतिम अंश में, तुलसीदास ने, राम के स्थान पर, लक्ष्मण का नामोल्लेख किया है, किन्तु उपर्युक्त दोनों उद्धरणों का भाव एक ही है।

[७२]

राम की आज्ञा का पालन करने में जो विलम्ब हुआ उसके लिए समुद्र ने पंचतत्त्वों की जड़ता पर दोषारोपण करते हुए उनसे क्षमा-याचना की—

रामायण— पृथ्वीवायुराकाशं आपो ज्योतिश्च राघव ।
स्वभावे सौम्यतिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ।।
—ग, ६।२२।२३ (ल, ५।८९४।५)

रामचरितमानस— गगन समीर अनल जल धरनी ।
इन्ह कर नाथ सहज जड़ करनी ।।
—५।५९।२

युद्धकाण्ड

(रामचरितमानस में लंकाकाण्ड)

[७३]

रामचरितमानस (६,९,८-९) में प्रहस्त नामक राक्षस रावण को उन पारषदों की बात न मानने की सलाह देता है, जो उसे प्रसन्न करने के लिए

घातक सलाह देते रहते हैं। वह एक लोकोक्ति उद्धृत करता है, जो ठीक उसी रूप में रामायण में उस स्थान पर प्राप्त होती है, जहाँ विभीषण रावण को उपदेश देते हैं—

रामायण— सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।
—ग, ६।६१।२१ (ख, ५।८८।१६)

रामचरितमानस— प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं ।
ऐसे नर निकाय जग अहहीं ।।
बचन परमहित सुनत कठोरे ।
सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ।।
—६।६।८-६

[७४]

सिन्धु को सेतु से पार करने का वर्णन करते समय तुलसीदास ने लिखा है कि राम ने जब एक ऊँचे स्थान पर चढ़कर सागर की विपुल जल-राशि को देखा तब समुद्र के समस्त जीव-जन्तु प्रभु के दर्शनार्थ जल के ऊपर आ गये (रामचरितमानस ६,४)। तदनन्तर तुलसीदास लिखते हैं कि राम ने सागर के दूसरे तट पर शिविर डालकर, बन्दरों को फल-फूल खाने की अनुमति दी (रामचरितमानस ६,५)। ये दोनों प्रसंग रामायण में नहीं है। लगता है कि तुलसीदास ने इनकी पूर्णरूप से उद्भावना की है। जो भी हो, यदि रामायण की समानान्तर पंक्तियों का परीक्षण किया जाए तो उसमें दो ऐसे विवरण प्राप्त होंगे जिनसे तुलसीदास को उपर्युक्त उद्भावना की प्रेरणा मिली होगी—

रामायण— (i) ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ।
—ग, ६।२२।७४अ (ख, ५।६५।४३)

(ii) वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ।।
—ग, ६।२२।८३ (ख, संस्करण में नहीं है।

इस बात को मानने में मुझे कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती कि तुलसीदास की उपर्युक्त दोनों उद्भावनाओं में से पहली वाल्मीकि के उस कथन से प्रेरित है जिसमें समुद्री जीव-जन्तुओं द्वारा सेतु-रचना देखने का वर्णन किया गया है और दूसरी प्रेरणा वाल्मीकि द्वारा सागर के दूसरे तट पर वर्णित 'बहुमूलफलोदक' जैसे अभिधान से मिली है।

[७५]

तुलसीदास ने लिखा है कि राम ने सुवेल पर चढ़कर पूर्व की ओर देखते हुए चन्द्र-दर्शन किया और अपने पास खड़े लोगों से उसमें स्थित लांछन के विषय में पूछा। इसके अनन्तर जब उन्होंने दक्षिण की ओर दृष्टि डाली तो उन्हें घने बादलों के बीच बिजली की कौंध और गर्जन का आभास हुआ। किन्तु, विभीषण ने उनके भ्रम का निराकरण करते हुए कहा कि जिसे आप बादल समझ रहे हैं वह रावण के राजमहल के शिखर पर विराजमान उसका राजछत्र है, जिसे आप बिजली की कौंध समझ रहे है, वह मन्दोदरी के कर्णफूल की कान्ति है, और जिसे आप मेघ-गर्जना समझ रहे हैं वह दुन्दुभि-ध्वनि है। राम ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर एक प्रहार किया, जिससे मन्दोदरी के कर्णफूलों के साथ रावण का छत्र और मुकुट धराशायी हो गया। रामायण की भली प्रकार जानकारी रखने वाला पाठक यह जानता है कि उसमें उक्त प्रकार का कोई वर्णन नहीं है। जो भी हो, रामायणान्तर्गत युद्धकांड के काव्यांशों में तुलसीदास की इस उद्भावना के सूत्र का पता मुझे लग गया है[१८]। यह सूत्र रामायण के ग संस्करण के छठें काण्ड के चालीसवें सर्ग में वर्णित है, (क और ख संस्करण में नहीं है)। यहाँ वाल्मीकि ने एक प्रासंगिक कथा का समावेश किया है जो प्रथम दृष्टि में तुलसीदास द्वारा वर्णित प्रसंग से बहुत भिन्न प्रतीत होती है, फिर भी वह उससे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। राम अपने अनुचरों के साथ सुवेल पर चढ़कर (ग, ६।४०।१) वहाँ से दसो दिशाओं पर दृष्टिपात करते हुए (४०,२) लंका को देखते हैं, जिसके गोपुर-शिखर पर रावण बैठा हुआ है (४०,३)। यहाँ वाल्मीकि ने रावण को जिन अभिधानों के साथ वर्णित किया है उनमें पहले 'श्वेतचामरपर्यन्त' और 'विजयच्छत्रशोभित' का नाम आता है। इसके बाद 'नीलजीमूतसंकाश' 'हेमसंछादितांबर' (४०,५) जैसे अभिधान आते हैं और अंत में एक उपमा है—

संध्यातपेन संछन्नं मेघराशिमिवाम्बरे ॥६॥

मेरे विचार से रावण और उसके छत्र को राम द्वारा भ्रम से मेघ-समूह समझने की तुलसी कृत उद्भावना का पूर्वार्द्ध वाल्मीकि के उपर्युक्त वर्णन से गृहीत है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता।

---

१८. यदि तुलसीदास ने प्रस्तुत प्रसंग में सीधे रामायण से प्रभाव न ग्रहण कर किन्हीं अन्य सूत्रों से किया हो तो भी रामायण की सम्बद्ध पंक्तियों को इसका आत्यंतिक आधार मानना चाहिए।

इसके उपरान्त वाल्मीकि कहते है कि रावण को देखते ही सुग्रीव उसके ऊपर कूद पड़ा और उसने उसके मुकुट को मस्तक से छीनकर धरती पर फेंक दिया--

इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पप्लुवे तस्य चोपरि।
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामासतद्भुवि ॥११॥

यही वर्णन वस्तुत: राम द्वारा रावण के छत्र और मुकुट (मन्दोदरी के कर्णफूलों के साथ) को बाण द्वारा मारकर गिराने की तुलसीकृत उद्भावना के उत्तरार्द्ध का मूल स्रोत है। तुलसीदास सदैव राम की मर्यादा को बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं; इसलिए उन्हें इस अद्भुत कृत्य को भी राम पर आरोपित करना उपयुक्त प्रतीत हुआ जबकि रामायण में यह कार्य सुग्रीव द्वारा सम्पन्न कराया गया है। परिणामस्वरूप कूदने और मल्लयुद्ध करने (जो वन्दर के लिये तो उपयुक्त है पर राम के लिये नहीं) के वर्णन के स्थान पर बाण का समावेश कर दिया गया है।

जहाँ तक सुवेलारोहण और चन्द्रोदय के भव्य दृश्य का सम्बन्ध है मैं सोचता हूँ कि ये दोनों 'ग', ६।३८ (ख, ६।१४) से ग्रहण किये गये हैं जहाँ वाल्मीकि ने भी पर्वतारोहण और पूर्णचन्द्र से प्रभामंडित रात्रि के आगमन का वर्णन किया है--(ख, ६।१४।२४; ग, ६।३८।१३)।

[७६]

मन्दोदरी रावण को, राम से युद्ध न करने के लिये प्रबोधती हुई कहती है कि जिसने विराध, खर, त्रिशिरा और कबन्ध तथा बालि को एक ही बाण से मार डाला, वह सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकता--

रामायण--
खरश्च निहत: संख्ये तदा रामो न मानुष: ॥
त्रिशिरश्च कबन्धश्च विराधो दण्डकेहत: ।
शरेणैकेन बाली च तदा रामो न मानुष: ॥
—ख, ६।३३।२६ब और अनु०(ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस--
बधि बिराध खर दूषनहिं लीला हतेउ कबंध ।
बालि एक सर मारेउ तेहि जानहु दसकंध ॥
—६।३६।१४-१५

[७७]

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम विलाप करते हुए कहते हैं कि दूसरी पत्नी, दूसरा पुत्र और अन्य भाई-बन्धु फिर से प्राप्त किये जा सकते हैं किन्तु सहोदर भाई संसार में फिर से नहीं प्राप्त हो सकता--

रामायण— यत्र क्वचिद् भवेद् भार्या पुत्रोन्येपि च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र सोदर्यमाप्नुयाम् ।।
—ख, ६।२४।७ब-८अ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।
मिलइ न जगत सहोदर[१९] भ्राता।
—६।६१।७-८

इसके पश्चात् राम स्वयं से पूछते हैं कि अयोध्या पहुँचने पर जब सुमित्रा लक्ष्मण के विषय में पूछेंगी, तो मैं क्या उत्तर दूँगा—

रामायण— सुमित्रां किन्नुवक्ष्यामि पुत्रदर्शन लालसाम्।
—ख, ६।२४।१२ब (ग, ६।४९।८ब)

रामचरितमानस— उतरु काह दइहउँ तेहि जाई।
—६।६१।१६अ

[७८]

कुम्भकर्ण के प्रसंग में तुलसीदास वाल्मीकि के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। आख्यान के विस्तृत वर्णन की समानान्तर पंक्तियों पर ध्यान न देकर मैं अपने को मात्र दो समानान्तर उपमाओं के उद्धरण तक सीमित रखना चाहूँगा। ये उपमाएं हमारे लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि तुलसीदास वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त उपमाओं का उपयोग करना पसंद नहीं करते। तुलसीदास, सोकर उठे हुये कुम्भकर्ण को साक्षात् काल से उपमित करते हैं—

जागा निसिचर देखिय कैसा ।।
मानहुँ काल देह धरि बैसा ।।
—६।६२।७

यही तुलना हमें रामायण में भी प्राप्त होती है, जहाँ यह कहा गया है कि देवता कुम्भकर्ण के सम्मुख, उसे स्वयं काल समझकर विस्मित हो जाते हैं—

शूलपाणिनामायन्तं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोयमिति मोहिताः ।।
—ख, ६।३८।११ (ग ६।४२।११)

यहाँ परिवेश तो कुछ भिन्न है, किन्तु भाव वही है। कुम्भकर्ण के रक्तस्राव की धाराओं से आप्लावित पर्वत से तुलना करने वाली दूसरी उपमा वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों में संयुक्त रूप से प्राप्त होती है—

१९. सम्वादिता ध्यान देने योग्य है—सोदर्य = सहोदर।

इसके उपरान्त वाल्मीकि कहते है कि रावण को देखते ही सुग्रीव उसके ऊपर कूद पड़ा और उसने उसके मुकुट को मस्तक से छीनकर धरती पर फेंक दिया--

इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पप्लुवे तस्य चोपरि ।
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामासतद्भुवि ॥११॥

यही वर्णन वस्तुतः राम द्वारा रावण के छत्र और मुकुट (मन्दोदरी के कर्णफूलों के साथ) को बाण द्वारा मारकर गिराने की तुलसीकृत उद्भावना के उत्तरार्द्ध का मूल स्रोत है । तुलसीदास सदैव राम की मर्यादा को बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं; इसलिए उन्हें इस अद्भुत कृत्य को भी राम पर आरोपित करना उपयुक्त प्रतीत हुआ जबकि रामायण में यह कार्य सुग्रीव द्वारा सम्पन्न कराया गया है । परिणामस्वरूप कूदने और मल्लयुद्ध करने (जो बन्दर के लिये तो उपयुक्त है पर राम के लिये नहीं) के वर्णन के स्थान पर बाण का समावेश कर दिया गया है ।

जहाँ तक सुवेलारोहण और चन्द्रोदय के भव्य दृश्य का सम्बन्ध है मैं सोचता हूँ कि ये दोनों 'ग', ६।३८ (ख, ६।१४) से ग्रहण किये गये हैं जहाँ वाल्मीकि ने भी पर्वतारोहण और पूर्णचन्द्र से प्रभामंडित रात्रि के आगमन का वर्णन किया है--(ख, ६।१४।२४; ग, ६।३८।१३) ।

[७६]

मन्दोदरी रावण को, राम से युद्ध न करने के लिये प्रबोधती हुई कहती है कि जिसने विराध, खर, त्रिशिरा और कबन्ध तथा बालि को एक ही बाण से मार डाला, वह सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकता--

रामायण--
खरश्च निहतः संख्ये तदा रामो न मानुषः ॥
त्रिशिरश्च कबन्धश्च विराधो दण्डकेहतः ।
शरेणैकेन बाली च तदा रामो न मानुषः ॥
--ख, ६।३३।२६ब और अनु०(ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस--
बधि बिराध खर दूषनहिं लीला हतेउ कबंध ।
बालि एक सर मारेउ तेहि जानहु दसकंध ॥
--६।३६।१४-१५

[७७]

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम विलाप करते हुए कहते हैं कि दूसरी पत्नी, दूसरा पुत्र और अन्य भाई-बन्धु फिर से प्राप्त किये जा सकते हैं किन्तु सहोदर भाई संसार में फिर से नहीं प्राप्त हो सकता--

रामायण—		यत्र क्वचिद् भवेद् भार्या पुत्रोन्येपि च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र सोदर्यमाप्नुयाम् ॥
—ख, ६।२४।७ब-८अ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस—		सुत बित नारि भवन परिवारा।
होंहि जाहिं जग बारहिं बारा ॥
मिलइ न जगत सहोदर[१९] भ्राता।
—६।६१।७-८

इसके पश्चात् राम स्वयं से पूछते हैं कि अयोध्या पहुँचने पर जब सुमित्रा लक्ष्मण के विषय में पूछेंगी, तो मैं क्या उत्तर दूँगा—

रामायण—		सुमित्रां किन्तुवक्ष्यामि पुत्रदर्शन लालसाम्।
—ख, ६।२४।१२ब (ग, ६।४९।८ब)

रामचरितमानस—		उतरु काह दइहउँ तेहि जाई।
—६।६१।१६अ

[७८]

कुम्भकर्ण के प्रसंग में तुलसीदास वाल्मीकि के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। आख्यान के विस्तृत वर्णन की समानान्तर पंक्तियों पर ध्यान न देकर मैं अपने को मात्र दो समानान्तर उपमाओं के उद्धरण तक सीमित रखना चाहूँगा। ये उपमाएं हमारे लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि तुलसीदास वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त उपमाओं का उपयोग करना पसंद नहीं करते। तुलसीदास, सोकर उठे हुये कुम्भकर्ण को साक्षात् काल से उपमित करते हैं—

जागा निसिचर देखिय कैसा ॥
मानहुं काल देह धरि बैसा ॥
—६।६२।७

यही तुलना हमें रामायण में भी प्राप्त होती है, जहाँ यह कहा गया है कि देवता कुम्भकर्ण के सम्मुख, उसे स्वयं काल समझकर विस्मित हो जाते हैं—

शूलपाणिनामायन्तं कुम्भकर्णं महाबलम्।
हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोयमिति मोहिताः ॥
—ख, ६।३८।११ (ग ६।४२।११)

यहाँ परिवेश तो कुछ भिन्न है, किन्तु भाव वही है। कुम्भकर्ण के रक्तस्राव की धाराओं से आप्लावित पर्वत से तुलना करने वाली दूसरी उपमा वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों में संयुक्त रूप से प्राप्त होती है—

१९. सम्वादिता ध्यान देने योग्य है—सोदर्य = सहोदर।

रामायण— कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः ।
रराज शोणितोत्सेकैर्गिरिः प्रस्रवणैरिव ।।
—ख, ६।४६।७५ (ग, ६।६७।८६)

स बाणैरतिविद्धांगः क्षतजेन समुक्षितः ।
रुधिरं परिसुश्राव गिरिः प्रस्रवणैरिव ।।
—ख, ६।४६।१०८ब-१०६अ (ग,६।६७।१२१)

रामचरितमानस— सोनित स्रवत सोह तन कारे ।
जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे ।।
—६।६६।७

[७६]

रावण ने जिस भाले से लक्ष्मण के वक्षस्थल पर भरपूर प्रहार करके उन्हें धराशायी किया, उसका वर्णन वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है—

शक्तिः समरप्रचण्डा स्वयंभूदत्ता ।
--ख, ६।३६।८३ (ग,६।५६।१०५)

तुलसीदास ने इन्हीं अभिधानों का अपरिवर्तित रूप में प्रयोग किया है—

ब्रह्मदत्त प्रचण्ड सक्ति ।
--६।८३।८

[८०]

रामायण में हनुमान, अचेत लक्ष्मण को ले जाने का प्रयास करते हुए रावण पर टूट पड़े और उन्होंने उसके ऊपर वज्राघात के सदृश मुष्टिक-प्रहार किया। तुलसीदास ने मुष्टिक के वर्णन को ठीक इसी रूप में स्वीकार करते हुए उसे, वज्राघात से उपमित कर, परिवर्द्धित कर दिया है--

रामायण— लक्ष्मणं तु ततः श्रीमान् जिघृक्षन्तं स मारुतिः ।
आजघानोरसि व्यूधे वज्रकल्पेन मुष्टिना ।।
--ख, ६।३६।८१ (ग,६।५६।११२)

रामचरितमानस— मुठिका एक ताहि कपि मारा ।
परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ।।
--६।८४।२

[८१]

राम को पैदल तथा रावण को रथ पर सवार देखकर देवगण अत्यंत

चिन्तित हो उठे, और इन्द्र ने मातलि द्वारा चालित अपने रथ को उनकी सहायता के लिए भेजा--

रामायण— भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च राक्षस:
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वदानवा: ॥
देवतानां वच: श्रुत्वा शतक्रतुरनन्तरम् ।
प्रेषयामास रामाय रथं मातलिसारथिम् ॥
—ख, ६।८६।६-७ (ग, ६।१०२।५ और अनु०)

रामचरितमानस— देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा ।
उपजा उर अति क्षोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा ।
हरष सहित मातलि लेइ आवा ॥
--६।८६।१-२

[८२]

रावण का वध करने के पश्चात् राम ने भालुओं और बन्दरों को धन्यवाद देते हुए कहा कि मैं आप लोगों की सहायता से ही अपने शत्रु को पराजित करने में सफल हो सका हूँ। इस साहसिक कार्य से आप लोगों को जो यश प्राप्त हुआ है, वह संसार में अमर रहेगा—

रामायण— उवाचेदं तदा सर्वान् राघवो मधुरं वच: ।
भवतां बाहुवीर्येण विक्रमेण बलेन च ॥
हतो राक्षसराजोऽयं रावणो लोकरावण: ।
अत्यद्भुमिदं कर्म भवतां कीर्तिवर्धनम् ॥
कथयिष्यन्ति पुरुषायावद्भूमिर्धरिष्यति ॥
—ख, ६।९२।७४-७६ (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— किय सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो ।
पायो बिभीषन राजु तिहुँ पुर जस तुम्हारो नित नयो ॥
—६।१०६।९-१०

[८३]

सीता के लंका से लौटने और बन्दर-भालुओं की उस सौन्दर्य को देखने की उत्सुकता का वर्णन, जिसके कारण इतना बड़ा युद्ध हुआ, रामायण और रामचरितमानस में पूर्णतया एक समान है (ख, ६,९९, ग,६,११४

रामचरितमानस ६, १०८)। तुलसीदास ने इस प्रसंग में न केवल वाल्मीकि के वर्णन के प्रत्येक ब्यौरे का पुनर्प्रस्तुतीकरण किया है, वरन् तत्संवादी पंक्तियों में वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त शब्दों अथवा अभिधानों का पुनर्कथन भी किया है। काव्य के इस अंश में मैं वाल्मीकि और तुलसीदास की कतिपय अत्यन्त मोहक अनुरूपताओं की ओर निर्देश करना चाहूँगा।

विभीषण ने सीता को स्नान कराने तथा सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित करने के लिए राक्षसियों को आदेश दिया। तदुपरान्त उन्हें सुन्दर पालकी पर बैठवाया--

रामायण— ततः सीतां शिरःस्नातां युवतीभिरलङ्कृताम्।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥
आरोप्य शिबिकां दिव्यां .... ।
—ख, ६।९९।१२ और अनु० (ग, ६।११४।१४ और अनु०)

रामचरितमानस— बहु प्रकार भूषन पहिराए।
सिबिका रुचिर साजि पुनि लाए॥
तापर हरषि चढ़ी बैदेही।
—६।१०८।७-८अ

रामचरितमानस में सीता बेतधारी रक्षकों से रक्षित होकर आगे बढ़ती हैं—

बेत-पानिरच्छक।
—६।१०८।८

ये वही रक्षक हैं जिनका वर्णन रामायण में संवादी स्थल पर किया गया है—

वेत्रझर्झरपाणय।
--ख, ६।९९।२३अ, ग ६।११४।२१अ)

बन्दर और भालू सीता को देखने के लिए एकत्र हो गए किन्तु उक्त रक्षकों ने उन्हें पीछे ढकेल दिया (ख, ६, ९९, १४-१६ और २२-२५; रामचरितमानस, ६, १०८, १०)। राम ने अपने प्रिय सहायकों के प्रति इस प्रकार के व्यवहार का विरोध करते हुए, विभीषण से, सीता को पैदल लाने को कहा, ताकि कपिगण अपनी माता की भाँति उनका दर्शन कर सकें—

रामायण— पश्यन्तु मातरं तस्मादिमे कौतूहलान्विताः।
विसृज्यशिबिकां तस्मात् पद्भ्यामेव समानय।
समीपं मम वैदेहीं पश्यन्त्वेनां वनौकसः।
--ख, ६।९९।३२ब और अनु० (ग संस्करण में नहीं है)

रामचरितमानस— कह रघुबीर कहा मम मानहु ।
सीतहिं सखा पयादे आनहु ।।
देखहिं कपि जननी की नाईं ।
—६।१०८।११-१२

[८४]

जब सीता ने अपने लिये चिता तैयार करने को कहा, तब लक्ष्मण पहले तो संकोचपूर्वक राम की ओर देखने लगे किन्तु बाद में मुखाकृति से राम की इच्छा जानकर उन्होंने चिता तैयार कर दी—

रामायण— एवमुक्तस्तु मैथिल्या लक्ष्मणः परवीरहा ।
विमर्षवशमापन्नो रामाननमुदैक्षत् ।।
सविज्ञाय मतं तत्तु रामस्याकारसूचितम् ।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ।।
नहि रामं तदा कश्चित् क्रोधशोक वशं गतम् ।
अनुनेतुं अथोवक्तुं द्रष्टुं वाप्यथ शक्नुवन् ।।
—ख, ६।१०१।२२-२४(ग, ६।११६।२०और अनु०)

रामचरितमानस— सुनि लछिमन सीता कइ बानी ।
.... ।।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ ।
प्रभुसन कछु कहि सकत न ओऊ ।।
देखि राम रुख लछिमन धाये ।
पावक प्रगटि काठ बहु लाये ।।
—६।१०९।३ और अनु०

रामचरितमानस और रामायण : एक पर्यवेक्षण

जब से ग्राउज़कृत रामचरितमानस का अनुवाद प्रकाशित हुआ है तब से अध्येता यह स्वीकार करने लगे हैं कि उक्त कृति किसी भी प्रकार से वाल्मीकि रामायण का अंधानुकरण नहीं है ।

"दोनों रचनाओं में वस्तु–संघटन और कार्यव्यापारों का संयोजन आवश्यक रूप से प्रायः एक होने पर भी उनके प्रत्येक विवरण में रचनाकारों का अपना अलग–अलग पुट है। दोनों कृतियों में उतना ही अन्तर है जितना कि एक ही पौराणिक विषय पर रचित दो ग्रीक त्रासदीकारों की दो नाट्यकृतियों में हुआ करता है। इनमें ऐक्य मात्र वाह्य रूप-रेखा की दृष्टि से है। दोनों कवियों के द्वारा स्वतंत्र रूप से उपस्थापित प्रासंगिक कथाएँ प्रायः पूर्णरूप से असमान हैं। मुख्य कथा में भी धनुर्भंग और परशुराम–विवाद जैसी कतिपय घटनाएँ असमान रूप से प्रस्तुत की गई हैं और उन्होंने अपना अलग स्वरूप धारण कर लिया है। अन्य प्रसंगों में जहाँ दोनों कथाएँ एक ही ढर्रे पर चलती हैं, वहाँ वाल्मीकि द्वारा संक्षिप्त किए गए अंशों को तुलसीदास ने विस्तार दिया है, जैसे विवाहोत्सव का वर्णन, और जहाँ वाल्मीकि विलम्ब तक ठहरे हैं वहाँ उनके उत्तराधिकारी तुलसीदास ने बड़ी शीघ्रता दिखाई है।"[1]

चूँकि हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं ने उपर्युक्त वक्तव्य की सत्यता को स्वीकार कर लिया है इसलिये इसके विस्तार में जाने का कोई औचित्य नहीं है। यूरोपवासियों के लिए बीस–तीस वर्ष पूर्व हिन्दी–साहित्य एक विशाल एवं अज्ञात महाद्वीप के समान था और मुट्ठी भर अन्वेषक मात्र इसकी मुख्य विशेषताओं पर विचार करने के अतिरिक्त कुछ अधिक नहीं कर सकते थे। सम्प्रति, यह देखकर प्रसन्नता का अनुभव होता है कि उक्त

१. ग्राउज़कृत रामचरितमानस के अनुवाद की भूमिका, पृष्ठ ४

अन्वेषकों का श्रम अब फलीभूत होने लगा है। अब यूरोप ने भी यह मानना प्रारंभ कर दिया है कि भारत की जनपदीय भाषाओं का साहित्य विजय की बाट जोहने वाला एक नवीन क्षेत्र और अनुसंधान के नये विषय प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत निबंध के शीर्ष पर नामांकित कृति इसका स्पष्ट प्रमाण है। टेसीटरी महोदय ने उस कार्य को कर दिखाया है जिसे हम सभी सम्पन्न देखने के अभिलाषी थे किन्तु जिसके लिये हम अनुसंधित्सुओं को न कभी समय मिला और न ही सुयोग।

कवि ने स्वयं कहा है (१, ७) कि उसकी कृति मुख्यतः वाल्मीकि रामायण और प्रसंगवशात् अन्य सूत्रों पर (क्वचिदन्यतोऽपि) आधृत है। इस वक्तव्य को अपना आधार मानकर टेसीटरी महोदय ने दोनों काव्यकृतियों की विस्तृत तुलना की है। अन्य सूत्रों के प्रश्न को उन्होंने स्पर्श नहीं किया; किन्तु यह दर्शाया कि तुलसीदास ने समग्रतः वाल्मीकि के सामान्य पथ का अनुगमन किया है। बालकांड के पूर्वार्द्ध और प्रायः सम्पूर्ण उत्तरकांड को छोड़कर, जो रामचरितमानस में पूर्णतः स्वतंत्र हैं, दोनों काव्यकृतियों में गंभीर विसंगतियाँ वाल्मीकि के युद्धकांड और तुलसीदास के लंकाकांड में पायी जाती हैं। यहाँ विभिन्न युद्धों के वर्णन बहुत भ्रामक हैं। एक युद्ध का दूसरे युद्ध से हेर-फेर हो गया है; एक योद्धा का शौर्य दूसरे पर आरोपित हो गया है। टेसीटरी महोदय की एतद्विषयक व्याख्या सुचिंतित होने पर भी मेरे विचार से सर्वथा विश्वसनीय नहीं है। उनकी धारणा है कि जब स्पष्ट रूप से मुद्रित पाठ और आधुनिक उपकरणों से युक्त होने के बावजूद हम वाल्मीकि के युद्धकांड के जटिल कार्य व्यापारों को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, तब तुलसीदास से भी बेढंगी पाण्डुलिपि की असुविधा के कारण स्वाभाविक रूप से त्रुटियाँ हो गयी होंगी। इस विषय पर मैं आगे चलकर विचार करूँगा।

दोनों काव्यकृतियों के बीच दूसरी भिन्नताओं के अन्यान्य कारण बताये गये हैं। तुलसीदास की, अपनी काव्यकृति को संक्षिप्त करने की, इच्छा इसी प्रकार का एक कारण है। इसीने उन्हें कतिपय प्रासंगिक कथाओं को छोड़ देने और अन्य स्थलों पर वाल्मीकि द्वारा वर्णित दो प्रसंगों को मिलाकर एक कर देने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार की वर्जना के क्रम में उन्होंने यदा-कदा रामायण के कतिपय संवादी शब्दों को अपरिवर्तित रखा है, जो वहाँ तो सटीक थे, किन्तु रामचरितमानस में प्रसंग विशेष के अभाव में

सर्वथा अनावश्यक हो गए हैं । दोनो काव्यों की भिन्नता का दूसरा कारण परवर्ती कवि की काव्यगत मौलिकता और उसका भाषाधिकार है । तुलसीदास ने वाल्मीकि की भाषा को ग्रहण करने से इनकार कर, उनके द्वारा प्रयुक्त उपमाओं के स्थान पर अभिनव और अम्लान उपमाओं का प्रयोग किया है । इसके बावजूद टेसीटरी महोदय ने ऐसे अनेक उदाहरण एकत्र किए हैं जिनमें तुलसीदास ने जाने-अनजाने वाल्मीकि के ही शब्दों की पुनरावृत्ति की है ।

टेसीटरी महोदय द्वारा उठाया गया दूसरा प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने रामायण के (क) पश्चिमी (ख) गौड़ी अथवा (ग) उत्तरी संस्करणों में से किस संस्करण का प्रयोग किया था ? एतद्विषयक मुख्य परिणाम इस प्रकार है :—

(१) तुलसीदास ने राम के चित्रकूट पहुँचने तक की कथा में 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है ।

(२) उन्होंने सुमंत्र के अयोध्या लौटने से लेकर अरण्यकांड के अन्त तक और कदाचित् किष्किन्धाकांड के बहुत बड़े भाग में 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है ।

(३) युद्धकांड (तुलसी का लंकाकांड) के प्रारम्भ से लेकर सिंधु-पार कर राम के सुवेलारोहण तक उन्होंने 'ग' संस्करण का प्रयोग किया है ।

(४) उन्होंने राक्षसों के साथ युद्ध करने (ख, ६, १७) से लेकर युद्धकांड के अंत तक 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है ।

प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया होगा तथापि समग्रतः उन्होंने वाल्मीकि की भाषा के अनुकरण और उनकी उपमाओं के ऋण से अपने को सायास बचाया है। दूसरी ओर हम रामचरितमानस के छठें सर्ग की भिन्नताओं को, मात्र वाल्मीकि की घटना-श्रृङ्खला को न समझने और मानसिक असमंजस में पड़ जाने का परिणाम नहीं मान सकते। मेरा विश्वास है कि तुलसीदास को अपने बाल्यकाल से ही घटना-श्रृङ्खला के प्रत्येक सोपान की जानकारी थी। अतः रामायण के प्राप्त संस्करणों की तुलना में यदि उनके वर्णन अलग पड़ते हैं तो केवल यही हो सकता है कि या तो उन्हें किसी ऐसे संस्करण का अध्ययन कराया गया होगा जिसकी हमें जानकारी नहीं है अथवा उन्होंने जान-बूझकर वाल्मीकि का परित्याग कर किसी दूसरे प्रमाणग्रंथ के वर्णन को स्वीकार किया होगा।

यद्यपि मैंने टेसीटरी महोदय से एक ऐसे प्रसंग में मतभेद व्यक्त किया है, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, तो भी मैं तुलसीदास के अध्येताओं को इस निबंध का अध्ययन करने की जोरदार संस्तुति करता हूँ। यह निबंध महत्त्वपूर्ण तुलनाओं एवं व्यंजक टिप्पणियों से युक्त है तथा इसे रघुवंश का कीर्तिगान करने वाले इन महाकवियों के पारस्परिक संबंधों पर होने वाले भविष्य के सभी अनुसंधानों में आवश्यक रूप से महत्त्व दिया जाना चाहिये।

—जार्ज ए० ग्रियर्सन

चेम्बरली
मार्च २६, १९१२

—जर्नल आफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, १९१२, पृष्ठ ७९४–९८ से साभार।

अन्वेषकों का श्रम अब फलीभूत होने लगा है। अब यूरोप ने भी यह मानना प्रारंभ कर दिया है कि भारत की जनपदीय भाषाओं का साहित्य विजय की बाट जोहने वाला एक नवीन क्षेत्र और अनुसंधान के नये विषय प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत निबंध के शीर्ष पर नामांकित कृति इसका स्पष्ट प्रमाण है। टेसीटरी महोदय ने उस कार्य को कर दिखाया है जिसे हम सभी सम्पन्न देखने के अभिलाषी थे किन्तु जिसके लिये हम अनुसंधित्सुओं को न कभी समय मिला और न ही सुयोग।

कवि ने स्वयं कहा है (१, ७) कि उसकी कृति मुख्यतः वाल्मीकि रामायण और प्रसंगवशात् अन्य सूत्रों पर (क्वचिदन्यतोऽपि) आधृत है। इस वक्तव्य को अपना आधार मानकर टेसीटरी महोदय ने दोनों काव्यकृतियों की विस्तृत तुलना की है। अन्य सूत्रों के प्रश्न को उन्होंने स्पर्श नहीं किया; किन्तु यह दर्शाया कि तुलसीदास ने समग्रतः वाल्मीकि के सामान्य पथ का अनुगमन किया है। बालकांड के पूर्वार्द्ध और प्रायः सम्पूर्ण उत्तरकांड को छोड़कर, जो रामचरितमानस में पूर्णतः स्वतंत्र हैं, दोनों काव्यकृतियों में गंभीर विसंगतियाँ वाल्मीकि के युद्धकांड और तुलसीदास के लंकाकांड में पायी जाती हैं। यहाँ विभिन्न युद्धों के वर्णन बहुत भ्रामक हैं। एक युद्ध का दूसरे युद्ध से हेर-फेर हो गया है; एक योद्धा का शौर्य दूसरे पर आरोपित हो गया है। टेसीटरी महोदय की एतद्विषयक व्याख्या सुचिंतित होने पर भी मेरे विचार से सर्वथा विश्वसनीय नहीं है। उनकी धारणा है कि जब स्पष्ट रूप से मुद्रित पाठ और आधुनिक उपकरणों से युक्त होने के बावजूद हम वाल्मीकि के युद्धकांड के जटिल कार्य व्यापारों को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, तब तुलसीदास से भी बेढंगी पाण्डुलिपि की असुविधा के कारण स्वाभाविक रूप से त्रुटियाँ हो गयी होंगी। इस विषय पर मैं आगे चलकर विचार करूँगा।

दोनों काव्यकृतियों के बीच दूसरी भिन्नताओं के अन्यान्य कारण बताये गये हैं। तुलसीदास की, अपनी काव्यकृति को संक्षिप्त करने की, इच्छा इसी प्रकार का एक कारण है। इसीने उन्हें कतिपय प्रासंगिक कथाओं को छोड़ देने और अन्य स्थलों पर वाल्मीकि द्वारा वर्णित दो प्रसंगों को मिलाकर एक कर देने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार की वर्जना के क्रम में उन्होंने यदा-कदा रामायण के कतिपय संवादी शब्दों को अपरिवर्तित रखा है, जो वहाँ तो सटीक थे, किन्तु रामचरितमानस में प्रसंग विशेष के अभाव में

सर्वथा अनावश्यक हो गए हैं। दोनों काव्यों की भिन्नता का दूसरा कारण परवर्ती कवि की काव्यगत मौलिकता और उसका भाषाधिकार है। तुलसीदास ने वाल्मीकि की भाषा को ग्रहण करने से इनकार कर, उनके द्वारा प्रयुक्त उपमाओं के स्थान पर अभिनव और अम्लान उपमाओं का प्रयोग किया है। इसके बावजूद टेसीटरी महोदय ने ऐसे अनेक उदाहरण एकत्र किए हैं जिनमें तुलसीदास ने जाने-अनजाने वाल्मीकि के ही शब्दों की पुनरावृत्ति की है।

टेसीटरी महोदय द्वारा उठाया गया दूसरा प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने रामायण के (क) पश्चिमी (ख) गौड़ी अथवा (ग) उत्तरी संस्करणों में से किस संस्करण का प्रयोग किया था? एतद्विषयक मुख्य परिणाम इस प्रकार है :—

(१) तुलसीदास ने राम के चित्रकूट पहुँचने तक की कथा में 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है।

(२) उन्होंने सुमंत्र के अयोध्या लौटने से लेकर अरण्यकांड के अन्त तक और कदाचित् किष्किन्धाकांड के बहुत बड़े भाग में 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है।

(३) युद्धकांड (तुलसी का लंकाकांड) के प्रारम्भ से लेकर सिंधु-पार कर राम के सुवेलारोहण तक उन्होंने 'ग' संस्करण का प्रयोग किया है।

(४) उन्होंने राक्षसों के साथ युद्ध करने (ख, ६, १७) से लेकर युद्धकांड के अंत तक 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है।

सम्प्रति, यह सब कुछ रोचक और महत्त्वपूर्ण है। इससे रामचरितमानस के मूलस्रोत एवं तुलसीदास के समय, अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध, में अवध और बनारस में प्रचलित रामायण के वर्तनों के प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। किन्तु मुझे यह प्रतीत होता है कि रामायण और रामचरितमानस की भिन्नताओं की भी एक व्याख्या सम्भव है, जिसकी चर्चा टेसीटरी महोदय ने नहीं की है। उनका अनुमान है कि तुलसीदास के पास रामायण की पाण्डुलिपि थी और काव्य-रचना करते समय वे उसकी सहायता लेते रहते थे। अतः कहा जा सकता है कि लंकाकांड के अतिरिक्त सभी भिन्नताएँ उनके द्वारा जानबूझ कर उत्पन्न की गयी हैं। अपने पास पाण्डुलिपि रखकर लिखना, यूरोपीय अध्येताओं की पद्धति है। एक भारतीय कवि द्वारा इस स्तर पर कार्य करने की बात सोची भी नहीं जा सकती। तुलसीदास एक वैष्णव संत थे, जिनका पालन-पोषण गुरुद्वारा, राम के प्रति प्रेम और

अन्वेषकों का श्रम अब फलीभूत होने लगा है। अब यूरोप ने भी यह मानना प्रारंभ कर दिया है कि भारत की जनपदीय भाषाओं का साहित्य विजय की बाट जोहने वाला एक नवीन क्षेत्र और अनुसंधान के नये विषय प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत निबंध के शीर्ष पर नामांकित कृति इसका स्पष्ट प्रमाण है। टेसीटरी महोदय ने उस कार्य को कर दिखाया है जिसे हम सभी सम्पन्न देखने के अभिलाषी थे किन्तु जिसके लिये हम अनुसंधित्सुओं को न कभी समय मिला और न ही सुयोग।

कवि ने स्वयं कहा है (१, ७) कि उसकी कृति मुख्यतः वाल्मीकि रामायण और प्रसंगवशात् अन्य सूत्रों पर (क्वचिदन्यतोऽपि) आधृत है। इस वक्तव्य को अपना आधार मानकर टेसीटरी महोदय ने दोनों काव्यकृतियों की विस्तृत तुलना की है। अन्य सूत्रों के प्रश्न को उन्होंने स्पर्श नहीं किया; किन्तु यह दर्शाया कि तुलसीदास ने समग्रतः वाल्मीकि के सामान्य पथ का अनुगमन किया है। बालकांड के पूर्वार्द्ध और प्रायः सम्पूर्ण उत्तरकांड को छोड़कर, जो रामचरितमानस में पूर्णतः स्वतंत्र हैं, दोनों काव्यकृतियों में गंभीर विसंगतियाँ वाल्मीकि के युद्धकांड और तुलसीदास के लंकाकांड में पायी जाती हैं। यहाँ विभिन्न युद्धों के वर्णन बहुत भ्रामक हैं। एक युद्ध का दूसरे युद्ध से हेर-फेर हो गया है; एक योद्धा का शौर्य दूसरे पर आरोपित हो गया है। टेसीटरी महोदय की एतद्विषयक व्याख्या सुचिंतित होने पर भी मेरे विचार से सर्वथा विश्वसनीय नहीं है। उनकी धारणा है कि जब स्पष्ट रूप से मुद्रित पाठ और आधुनिक उपकरणों से युक्त होने के बावजूद हम वाल्मीकि के युद्धकांड के जटिल कार्य व्यापारों को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, तब तुलसीदास से भी बेढंगी पाण्डुलिपि की असुविधा के कारण स्वाभाविक रूप से त्रुटियाँ हो गयी होंगी। इस विषय पर मैं आगे चलकर विचार करूँगा।

दोनों काव्यकृतियों के बीच दूसरी भिन्नताओं के अन्यान्य कारण बताये गये हैं। तुलसीदास की, अपनी काव्यकृति को संक्षिप्त करने की, इच्छा इसी प्रकार का एक कारण है। इसीने उन्हें कतिपय प्रासंगिक कथाओं को छोड़ देने और अन्य स्थलों पर वाल्मीकि द्वारा वर्णित दो प्रसंगों को मिलाकर एक कर देने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार की वर्जना के क्रम में उन्होंने यदा-कदा रामायण के कतिपय संवादी शब्दों को अपरिवर्तित रखा है, जो वहाँ तो सटीक थे, किन्तु रामचरितमानस में प्रसंग विशेष के अभाव में

सर्वथा अनावश्यक हो गए हैं। दोनो काव्यों की भिन्नता का दूसरा कारण परवर्ती कवि की काव्यगत मौलिकता और उसका भाषाधिकार है। तुलसीदास ने वाल्मीकि की भाषा को ग्रहण करने से इनकार कर, उनके द्वारा प्रयुक्त उपमाओं के स्थान पर अभिनव और अम्लान उपमाओं का प्रयोग किया है। इसके बावजूद टेसीटरी महोदय ने ऐसे अनेक उदाहरण एकत्र किए हैं जिनमें तुलसीदास ने जाने-अनजाने वाल्मीकि के ही शब्दों की पुनरावृत्ति की है।

टेसीटरी महोदय द्वारा उठाया गया दूसरा प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने रामायण के (क) पश्चिमी (ख) गौड़ी अथवा (ग) उत्तरी संस्करणों में से किस संस्करण का प्रयोग किया था? एतद्विषयक मुख्य परिणाम इस प्रकार है :—

(१) तुलसीदास ने राम के चित्रकूट पहुँचने तक की कथा में 'ग' संस्करण का अनुसरण किया है।

(२) उन्होंने सुमंत्र के अयोध्या लौटने से लेकर अरण्यकांड के अन्त तक और कदाचित् किष्किन्धाकांड के बहुत बड़े भाग में 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है।

(३) युद्धकांड (तुलसी का लंकाकांड) के प्रारम्भ से लेकर सिंधु-पार कर राम के सुवेलारोहण तक उन्होंने 'ग' संस्करण का प्रयोग किया है।

(४) उन्होंने राक्षसों के साथ युद्ध करने (ख, ६, १७) से लेकर युद्धकांड के अंत तक 'ख' संस्करण का प्रयोग किया है।

सम्प्रति, यह सब कुछ रोचक और महत्त्वपूर्ण है। इससे रामचरितमानस के मूलस्रोत एवं तुलसीदास के समय, अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध, में अवध और बनारस में प्रचलित रामायण के वर्तनों के प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। किन्तु मुझे यह प्रतीत होता है कि रामायण और रामचरितमानस की भिन्नताओं की भी एक व्याख्या सम्भव है, जिसकी चर्चा टेसीटरी महोदय ने नहीं की है। उनका अनुमान है कि तुलसीदास के पास रामायण की पाण्डुलिपि थी और काव्य-रचना करते समय वे उसकी सहायता लेते रहते थे। अतः कहा जा सकता है कि लंकाकांड के अतिरिक्त सभी भिन्नताएँ उनके द्वारा जानबूझ कर उत्पन्न की गयी हैं। अपने पास पाण्डुलिपि रखकर लिखना, यूरोपीय अध्येताओं की पद्धति है। एक भारतीय कवि द्वारा इस स्तर पर कार्य करने की बात सोची भी नहीं जा सकती। तुलसीदास एक वैष्णव संत थे, जिनका पालन-पोषण गुरुद्वारा, राम के प्रति प्रेम और

भय के वातावरण में, हुआ था। इसी गुरु के निर्देशन में उन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी। यदि वह शिक्षा आजकल के शास्त्रज्ञ वैष्णवों की शिक्षा के समान कोई वस्तु थी, तो उन्होंने अपने बाल्यकाल में ही सम्पूर्ण रामायण कण्ठस्थ कर ली थी, और वे उसकी कथा के अन्य रूपान्तरों से भी सुपरिचित थे। केवल चेतन अथवा अचेतन स्मृति की अवस्था में उन्होंने वाल्मीकि का अनुसरण किया है और स्मृति के विफल होने पर वे वाल्मीकि से पृथक् हो गए हैं। किसी अन्य ग्रन्थ के वर्णन को सोद्देश्य वरीयता देने के कारण भी उनके वर्णन में अन्तर आया है। हमने देखा है कि तुलसीदास ने अनेक शब्दों में कहा है कि मैंने वाल्मीकि के महाकाव्य के अतिरिक्त अन्य सूत्रों का भी सहारा लिया है। समीक्षकों ने भी एक स्वर से इस बात का उल्लेख किया है कि उनके द्वारा तीन ग्रन्थ प्रयोग में लाये गये हैं—अध्यात्मरामायण, भुशुंडि-रामायण, और वशिष्ठ-संहिता। यद्यपि टेसीटरी महोदय ने रघुवंश से अनुबंधित स्थलों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है तथापि मैं सोचता हूँ कि उन्होंने इन बाहरी सूत्रों के महत्त्व पर कम ध्यान दिया है। जहाँ तक 'भुशुंडि-रामायण' की बात है मैंने उसे कभी नहीं देखा और न ही उसकी किसी पांडुलिपि के होने की मुझे कोई सूचना है।* किन्तु, अन्य दोनों ग्रन्थों से मैं भली-भाँति परिचित हूँ और ये सुविधापूर्वक प्राप्त भी हैं। इन ग्रन्थों के परीक्षण से, सम्भवतः तुलसीदास और वाल्मीकि के काव्यों का अन्तर, टेसीटरी महोदय द्वारा प्रयुक्त पद्धति की अपेक्षा सरलता पूर्वक हो जाता। एक बात का मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपने समग्र रूप में तुलसीदास ने केवल वाल्मीकि रामायण में निमग्न होकर काव्य-रचना नहीं की बल्कि अपने आराध्य के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले उस समय के सभी वैष्णव ग्रन्थों का अवगाहन किया। अपने साहित्यिक संदर्भों के पुनरीक्षण की युक्ति उन्हें ज्ञात नहीं थी। यदि उन्होंने उद्धरण दिये तो निस्संदेह उनका उद्धरण शाब्दिक त्रुटियों से युक्त है, जैसा कि आजकल के विद्वान् पंडित भी करते हैं। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि वे स्वयं यह बताने में हैरान हो जाते कि स्थल विशेष की अपनी अभिव्यक्तियों में उन्होंने किस ग्रंथ को आधार बनाया है।

एक संदर्भ में मैं टेसीटरी महोदय से पूर्णतः सहमत हूँ। उन्होंने तुलसीदास की मौलिकता पर बल दिया है। तुलसीदास एक महान् कवि थे। यद्यपि यत्र-तत्र उनकी स्मृति विफल हुई होगी और उसने उन्हें अनुद्दिष्ट उद्धरण

---

* द्रष्टव्य अनुवादकीय टिप्पणी पृ० ३५–३६।

प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया होगा तथापि समग्रतः उन्होंने वाल्मीकि की भाषा के अनुकरण और उनकी उपमाओं के ऋण से अपने को सायास बचाया है। दूसरी ओर हम रामचरितमानस के छठें सर्ग की भिन्नताओं को, मात्र वाल्मीकि की घटना-शृङ्खला को न समझने और मानसिक असमंजस में पड़ जाने का परिणाम नहीं मान सकते। मेरा विश्वास है कि तुलसीदास को अपने बाल्यकाल से ही घटना-शृङ्खला के प्रत्येक सोपान की जानकारी थी। अतः रामायण के प्राप्त संस्करणों की तुलना में यदि उनके वर्णन अलग पड़ते हैं तो केवल यही हो सकता है कि या तो उन्हें किसी ऐसे संस्करण का अध्ययन कराया गया होगा जिसकी हमें जानकारी नहीं है अथवा उन्होंने जान-बूझकर वाल्मीकि का परित्याग कर किसी दूसरे प्रमाणग्रंथ के वर्णन को स्वीकार किया होगा।

यद्यपि मैंने टेसीटरी महोदय से एक ऐसे प्रसंग में मतभेद व्यक्त किया है, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, तो भी मैं तुलसीदास के अध्येताओं को इस निबंध का अध्ययन करने की जोरदार संस्तुति करता हूँ। यह निबंध महत्त्वपूर्ण तुलनाओं एवं व्यंजक टिप्पणियों से युक्त है तथा इसे रघुवंश का कीर्तिगान करने वाले इन महाकवियों के पारस्परिक संबंधों पर होने वाले भविष्य के सभी अनुसंधानों में आवश्यक रूप से महत्त्व दिया जाना चाहिये।

—जार्ज ए० ग्रियर्सन

चेम्बरली
मार्च २६, १९१२

—जर्नल आफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, १९१२, पृष्ठ ७९४–९८ से साभार।

डॉ टेसीटरी की रचनाएँ

(१) इटली में प्रकाशित—

१. भववैराग्यशतकम् (जॅर्नल ऑफ् दी एशियाटिक सोसाइटी, इटली, वो० २२, १९०९, पृ० १७९–२११)

२. भववैराग्यशतकम् का शुद्धि-पत्र (वही, वो० १४, १९११, पृ० ४०५-४१६)

३. रामचरितमानस और रामायण (वही, वो० १४, १९११, पृ० ८९–१६४)

४. धर्मदास की उपदेशमाला (वही, वो० १५, १९१२, पृ० १–१३९)

५. 'नासिकेतोपाख्यान' का मारवाड़ी रूपांतर— 'नासिकेत री कथा' (Riv. di. Studi Orient, Vol 6) १९१३, पृ० ११३–१३०।

६. जयपुरी भाषा की 'करकंडुकथा' (जर्नल ऑफ् दी ए० सो० इटली, वो० २६, १९१३, पृ० ५–५१)

७. आजाद बक्त डाल-इन्दोस्तानो मीर अम्मन (उदिने, १९१३, पृ० १–११३)

८. हाल की सतसई (रसेग्ना नजिओनाले, Fasc, १ फेब्राइयो, १ गियुग्नो, १९१४, पृ० १–४०)

९. भक्त और कवि तुलसीदास (रॉयल एकेडेमी ऑफ् आर्कियोलोजी, वो० ३, १९१४, पृ० ९३–१२१)

१०. इन्द्रिय पराजय शतकम् (रिविस्ता डेगली स्टडी ओरिएन्ट, वो० ७, १९१७, पृ० ५०३–५६४)

११. तुलसीदास पर रामानुज एवं शंकराचार्य का प्रभाव (उदीने की एकेडेमी में भाषण, २८ दिसम्बर १९१२)

(२) अंग्रेजी में प्रकाशित—

१. गुजराती और मारवाड़ी में चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति के प्रत्ययों का उद्भव (ज० ऑफ् दी रॉ० ए० सो०, जुलाई १९१३, पृ० ५५३-५६७)

२. तुलसीदास जी की प्राचीन बैसवाड़ी के व्याकरण के कुछ नमूने (वही, अक्टूबर १९१४, पृ० ९०१-९१३)

३. क्या धर्मदास गणी महावीर के समकालीन थे ? (जैन साहित्य सम्मेलन जोधपुर, १९१४)

(३) जर्मनी में प्रकाशित—

१. आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृदन्त का उद्भव (जेट्सक्रिफ्ट डर ड्यु स्चेन मोरजेन लांडिस्चेन जेसेल्स् चाफ्ट, वो० ६८, १९१४, पृ० १-८)

(४) भारत में प्रकाशित—

१. रामचरितमानस और रामायण (इंडियन एंटिक्वेरी, वो० ४१-४२, १९१२-१३, पृ० १-३१)

२. परमज्योति स्तोत्र और सिद्धसेन दिवाकर के कल्याणमंदिर स्तोत्र का पुरानी ब्रज में रूपांतर (वही, वो० ४२, १९१३, पृ० ४२-४६)

३. गुजराती और जयपुरी में 'सलेमान का न्याय' के दो जैन रूपांतर (वही, वो० ४२, १९१३, पृ० १४८-१५२)

४. पश्चिमी राजस्थानी का व्याकरण—अपभ्रंश, गुजराती एवं मारवाड़ी के उल्लेखों सहित (वही, वो० ४३-४४, १९१४-१६, पृ० १-१०६)

५. पुरानी गुजराती एवं पुरानी पश्चिमी राजस्थानी (गुजराती साहित्य परिषद् पाँचवीं रिपोर्ट, मई १९१५, पृ० १-७)

६. वर्तमान जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरि (कलकत्ता, १९१७, पृ० १-२४)

(५) राजस्थान का चारण-साहित्य एवं ऐतिहासिक सर्वे—

१. राजपूताने के चारणसाहित्य एवं उसके इतिहास पर खोज करने की योजना (जर्नल ऑफ् दी ए० सो० बंगाल, वो० १०, १९१४, पृ० ३७३-४१९)

२. १९१५ का प्रगति विवरण (वही, वो० १२, १९१६, पृ० ५७-११६)

३. १९१६ का प्रगति विवरण (वही, वो० १३, १९१७, पृ० १९५-२५२)

४. १९१७ का प्रगति विवरण (वही, वो० १५, १९१९, पृ० ५–७९)
५. विवरणात्मक सूची—चारण-साहित्य और ऐतिहासिक हस्तलिखित प्रतियां, जोधपुर स्टेट, गद्य भाग १ (प्रकाशित १९१७, पृ० १–६९)
६. वही, बीकानेर, गद्य साहित्य, भाग २, (प्रकाशित १९१८, पृ० १-९४)
७. वही, बीकानेर, पद्य साहित्य, भाग १ (प्रकाशित १९१८, पृ० १–८७)
८. वचनिका राठौर रतन महेश दासोतरी, खिड़िया जग्गा री कही, डिंगल नोट्स और कोष सहित, (१९१७, पृ० १–१३९)
९. बेलि कृष्ण रुक्मिणी री (वही, १९१९, पृ० १–१४३)
१०. छंदराव जेतसीरो (वही, १९२०, पृ० १–११३)

(६) समालोचनाएँ—

१. अहिंसा दिग्दर्शन
२. जैन शासन विशेषांक
३. प्राकृत मार्गोपदेशिका

(७) कुछ अन्य संपादित ग्रंथ—

१. श्रेणिक कथा
२. कुम्भापुत्त कहा
३. सठ्ठिटसयं
४. पज्जंता सहणं
५. पुण्याश्रव कथाकोष
६. कल्याणमंदिर स्तोत्र
७. गौड़ी–पार्श्व स्तोत्र

(८) कृतियाँ, जो टेसीटरी के जीवनकाल में पूरी नहीं हो सकीं—

१. गोरखनाथबोध व कनफटा जोगी
२. जयवल्लभ कृत वज्जालग्गं
३. उक्तिरत्नाकर
४. बीकानेर का इतिहास-राव लूणकरण तक
५. बीकानेर के ख्यात व वीरगीत
६. कथाकल्लोल
७. राजस्थानी गजलें
८. भारतीय भाषाओं का कोश

नामानुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२९	३०	लंका	लंकाकांड
३१	६	मन अवश्य था	मन में अवश्य था
३३	२५	मारीच	मारीचि
३५	७	परिवर्तन	प्रवर्तन
३५	१६ और २६	भुसुण्डिरामायण	भुशुण्डिरामायण
३७	११	अभिसिक्त	अभिषिक्त
३८	७	प्रधान	प्रथम
३८	१२	त्रिशरा	त्रिशिरा
४१	६	सतत्	सतत
४१	२७	सौन्दर्य	सोदर्य
४५	१८	अंत्येष्ठि	अंत्येष्टि
४८	२०	कुम्भकरण	कुम्भकर्ण
४९	१८	'क'	'ख'
५०	६	नखंद्रष्टायुधाः	नखदंष्ट्रायुधाः
५२	२०	मारीच	मारीचि
५४	१५-१६	नागरिकों अभिलाषा	नागरिकों की अभिलाषा
५४	१६-१७	दशरथ की की अभिलाषा	दशरथ की अभिलाषा
६८	१९	पततातां	पततां
७१	३	तेनाग्नि काशेण	तेनाग्निनिकाशेन
७५	५	अतिवृत्ता ईषत्त्रासाऽल्लोभयन्	अतिवृत्तोषुत्रासाल्लोभयन्
७५	६	क्वचित्नासाच्च	क्वचित्त्रासाच्च
७५	१९	अत्याधिक	अत्यधिक
८४	२८	शरणगत	शरणागत